युगवीर–समन्तभद्र-ग्रन्थमाला–६/२

करणानुयोग-प्रवेशिका

लेखक
सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री
पूर्व प्राचार्य, स्याद्वाद-महाविद्यालय,
वाराणसी

वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट-प्रकाशन

ग्रन्थमाला-सम्पादक व नियामक :
डॉ० दरबारीलाल कोठिया न्यायाचार्य
सेवा-निवृत्त रीडर, जैन-बौद्धदर्शन, प्राच्यविद्या-धर्मविज्ञान-संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।

लेखक :
सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री
ट्रस्ट संस्थापक :
आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

प्रकाशक :
मंत्री, वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट
बी० ३२/१२, जैन निकेतन
नरिया, पो०—बी० एच० यू०
वाराणसी—५ (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण : २७ मार्च, १९७५
द्वितीय संस्करण : ५ अगस्त, १९८७

मूल्य : दस रुपया मात्र

मुद्रक :
सन्तोषकुमार उपाध्याय
नया संसार प्रेस
भदैनी, वाराणसी ।

दो शब्द

बहुत समय पहले मैंने 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' अनुकरणपर करणानुयोग-प्रवेशिका, चरणानुयोग-प्रवेशिका और द्रव्यानुयोग-प्रवेशिका प्रश्नोत्तरके रूपमें रचीं थीं। वे तीनों वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्टके उत्साही कर्मठ मंत्री डॉ० दरबारी लालजी कोठिया न्यायाचार्यके सौजन्यवश ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रहीं हैं।

प्रस्तुत करणानुयोग-प्रवेशिकामें ७४४ पारिभाषिक शब्दोंका, जो करणानुयोगसे सम्बद्ध हैं, अर्थ दिया गया है। इसी तरह द्रव्यानुयोग-प्रवेशिकामें २६५ शब्दोंकी और चरणानुयोग-प्रवेशिकामें ५८२ शब्दोंकी परिभाषाएँ दी गयीं हैं।

आशा है इन अनुयोगोंके स्वाध्याय-प्रेमियोंको और विद्वानोंको भी इससे सहयोग मिलेगा। यदि ऐसा हुआ तो मैं अपने श्रमको सफल समझूंगा। यदि मैं कहीं स्खलित हुआ हूं तो विद्वान् उसे सुधार लेवें और मुझे भी सूचित करें। मैंने आगमग्रन्थोंके अनुसार ही प्रत्येक परिभाषा दी है।

स्याद्वाद-महाविद्यालय
भदैनी; वाराणसी।

कैलाशचन्द्र शास्त्री

प्रकाशककी ओरसे

[प्रथम संस्करण]

लगभग एक वर्ष पूर्वकी बात है। श्रद्धेय श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, सिद्धान्ताचार्य, पूर्व प्राचार्य एवं वर्तमान अधिष्ठाता स्याद्वाद-महाविद्यालयके पास लिखित, किन्तु अप्रकाशित महत्वकी विपुल सामग्री देखी। इस सामाग्रीमें उनकी लिखी हुई कई मौलिक छोटी-छोटी कृतियाँ थीं। जैनधर्म-परिचय, आरम्भिक जैनधर्म, करणानुयोग-प्रवेशिका, द्रव्यानुयोग-प्रवेशिका, चरणानुयोग-प्रवेशिका और भगवान् महावीरका जीवन-चरित ये छह रचनाएँ उसमें प्राप्त हुईं। इनकी उपयोगिता, महत्ता और मौलिकताको ज्ञातकर श्रद्धेय पण्डितजीसे उन्हें वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्टसे प्रकाशित करनेकी अनुज्ञा माँगी। हमें प्रसन्नता है कि उन्होंने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

जैनधर्म-परिचय और आरम्भिक जैनधर्म ये दो रचनाएँ छपकर पाठकोंके हाथोंमें पहुँच चुकी हैं। आज करणानुयोग-प्रवेशिका, द्रव्यानुयोग-प्रवेशिका, चरणानुयोग-प्रवेशिका और भगवान् महावीरका जीवन-चरित ये चार कृतियां एक साथ अलग-अलग प्रकाशित हो रही हैं। आशा है पाठक इन्हें बड़े चाव से अपनाएँगे।

हम इस महान् ज्ञान-दानके लिए श्रद्धेय पण्डितजीके हृदयसे आभारी हैं। पण्डितजी ट्रस्टके ट्रस्टी भी हैं, इससे भी हमें आपका सदैव परामर्शादि योगदान सहजमें मिलता रहता है। यह वस्तुतः उनका महान अनुग्रह है।

ट्रस्ट-कमेटीका सहकार भी हमें प्राप्त है। उसीके कारण हम ट्रस्टसे लगभग १८ महत्त्वपूर्ण कृतियां प्रकाशित कर सके हैं, अतः उसे भी हम धन्यवाद देते हैं।

अस्सी, वाराणसी-५ (डॉ०) दरबारीलाल कोठिया
फाल्गुनी अष्टाह्निका-पूर्णिमा, वी० नि० सं० २५०१ मंत्री
२७ मार्च, १९७५ वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट

प्रकाशकीय

[द्वितीय संस्करण]

मार्च १९७५ में 'करणानुयोग-प्रवेशिका' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। वह पाठकोंको अन्य दो पूर्व प्रकाशित द्रव्यानुयोग-प्रवेशिका और चरणानुयोग-प्रवेशिकाकी तरह इतना पसन्द आया कि वह तीन-चार वर्ष पूर्व ही अलभ्य एवं अप्राप्य हो चुका तथा पाठकोंकी मांग उसके लिए निरन्तर बनी रही। किन्तु परिस्थितिवश हम इससे पूर्व उसे प्रकाशित नहीं कर पाये।

आज हमें प्रसन्नता है कि हम उसका द्वितीय संस्करण निकालनेमें सक्षम हो सके हैं। इसके पहले हाल ही में 'द्रव्यानुयोग-प्रवेशिका' और 'चरणानुयोग-प्रवेशिका'के भी द्वितीय संस्करण प्रकट कर चुके हैं। उनका भी प्रथम संस्करण अप्राप्य हो चुका था और पाठक उनकी मांग कर रहे थे। आशा है इन तीनों प्रवेशिकाओंसे स्वाध्यायार्थियोंको ज्ञान-लाभके साथ हार्दिक सन्तोष-लाभ होगा।

इन प्रवेशिकाओंकी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इनमें—द्रव्यानुयोग-प्रवेशिकामें द्रव्यानुयोग सम्बन्धी २९५, चरणानुयोग-प्रवेशिकामें चरणानुयोग-विषयक ५६३ और करणानुयोग-प्रवेशिकामें करणानुयोग सम्बन्धी ७४४ (कुल १६०२) महत्त्वपूर्ण एवं ज्ञानवर्द्धक प्रश्न और उनके सरल उत्तर समाहित हैं।

इनके प्रकाशनमें जहाँ ट्रस्टके आदरणीय ट्रस्टी जनोंका सहकार मिला है वहाँ डॉ० नरेन्द्रकुमारजी जैन प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय जक्खिनी वाराणसी और श्री लालजी जैनका भी पूरा सहयोग प्राप्त हुआ है। वास्तव में मेरे बनारससे बीना (सागर), म० प्र० चले जानेपर ये दोनों महानुभाव ट्रस्टके ग्रन्थ प्रकाशनों एवं व्यवस्थामें हार्दिक सहयोग कर रहे हैं। हम इन सबके आभारी हैं।

श्री सन्तोषकुमार उपाध्याय, मालिक नया संसार प्रेस भदैनी, वाराणसी और उनके परिकरको भी धन्यवाद देते हैं, जो तत्परतासे मुद्रण-कार्य करते हैं।

बीना (सागर),
म० प्र०
५ अगस्त १९८७

(डॉ०) दरबारीलाल कोठिया
मंत्री

विषयानुक्रमणी

१. प्र०—करणानुयोग किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें लोक और अलोकका विभाग, कालका परिवर्तन, गणित, गुणस्थान, मार्गणा तथा कर्मोंके बन्ध आदिका वर्णन होता है उसे करणानुयोग कहते हैं।

२. प्र०—करण किसे कहते हैं ?

उ०—करण गणितको भी कहते हैं और जीवके भावको भी करण कहते हैं।

३. प्र०—परिकर्माष्टक किन्हें कहते हैं ?

उ०—संकलन, व्यवकलन, गुणकार, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल इन आठोंको परिकर्माष्टक कहते हैं।

४. प्र०—संकलन किसे कहते हैं ?

उ०—लोकमें जिसे जोड़ना कहते हैं उसे ही संकलन कहते हैं। जैसे—दो और दो चार होते हैं।

५. प्र०—व्यवकलन किसे कहते हैं ?

उ०—लोकमें जिसे घटाना या बाकी निकालना कहते हैं उसे व्यवकलन कहते हैं। जैसे—चारमेंसे दोको घटानेसे दो शेष रहते हैं।

६. प्र०—गुणकार किसे कहते हैं ?

उ०—गुणा करनेका नाम गुणकार है। जैसे—चारको दोसे गुणा करनेपर आठ होते हैं।

७. प्र०—भागहार किसे कहते हैं ?

उ०—भाग देनेका नाम भागहार है। जैसे—चारमें दोका भाग देनेसे दो लब्ध आता है।

८. प्र०—वर्ग किसे कहते हैं ?

उ०—समान दो राशियोंका परस्परमें गुणा करनेका नाम वर्ग है। जैसे—दोको दोसे गुणा करनेपर चार होता है। सो दोका वर्ग चार है। वर्गको कृति भी कहते हैं।

९. प्र०—घन किसे कहते हैं ?

उ०—समान तीन राशियोंको परस्परमें गुणा करनेका नाम घन है। जैसे—चारको तीन जगह रखकर परस्परमें गुणा करनेसे चौंसठ होता है। सो चारका घन चौंसठ है।

१०. प्र०—वर्गमूल किसे कहते हैं ?

उ०—जिसका वर्ग करनेसे जो राशि होती है उसे उस राशिका वर्गमूल कहते हैं। जैसे—दोका वर्ग करनेसे चार राशि उत्पन्न होती है। सो दो चारका वर्गमूल है।

११. प्र०—प्रथम, द्वितीय आदि वर्गमूल किसे कहते हैं ?

उ०—जिस राशिका जो वर्गमूल होता है उसे उस राशिका प्रथम वर्गमूल कहते हैं और प्रथम वर्गमूलका जो वर्गमूल होता है उसे उसी राशिका द्वितीय वर्गमूल कहते हैं। इसी तरह दूसरे वर्गमूलका जो वर्गमूल होता है उसे उसी राशिका तृतीय वर्गमूल कहते हैं। जैसे—पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीसका प्रथम वर्गमूल दोसौ छप्पन, द्वितीय वर्गमूल सोलह, तृतीय वर्गमूल चार और चतुर्थ वर्गमूल दो होता है।

१२. प्र०—घनमूल किसे कहते हैं ?

उ०—जो राशि जिसका घन करनेसे होती है उस राशिका वह घनमूल होता है। जैसे—चारका घन करनेसे चौंसठ राशि होती है। अतः चौंसठका घनमूल चार है।

१३. प्र०—त्रैराशिक किसे कहते हैं ?

उ०—प्रमाण, फल और इच्छा ये तीन राशियाँ हैं। जिस प्रमाणसे जो फल उत्पन्न हो वह तो प्रमाण राशि और फल राशि है और जितनी अपनी इच्छा हो उसका नाम इच्छा राशि है। ये तीन राशि स्थापित करके फल राशिको इच्छा राशिसे गुणा करके उसमें प्रमाण राशिको भाग देनेसे जो प्रमाण आवे वही लब्ध होता है। जैसे—चार हाथके छियानबे अंगुल होते हैं तो दस हाथके कितने अंगुल हुए ऐसा त्रैराशिक किया। यहाँ प्रमाण राशि चार हाथ, फल राशि छियानवे अंगुल और इच्छा राशि दस हाथ। सो दसको छियानवेसे गुणा करके उसमें चारका भाग देनेपर दोसौ चालीस अंगुल लब्ध हुआ।

१४. प्र०—क्षेत्रफल किसे कहते हैं ?

उ०—लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाईमेंसे जहाँ दोकी विवक्षा हो एकको न हो उसे प्रतर क्षेत्र या वर्गरूप क्षेत्र कहते हैं और लम्बाईको चौड़ाईसे गुणा करने पर जो फल आता है उसे क्षेत्रफल कहते हैं। जैसे—चार हाथ लम्बे और पाँच हाथ चौड़े क्षेत्रका क्षेत्रफल २० हाथ हुआ।

१५. प्र०—घन क्षेत्रफल किसे कहते हैं ?

उ०—जहाँ लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई तीनोंकी विवक्षा हो उसे घन क्षेत्र कहते हैं और उसके क्षेत्रफलको खात फल या घन क्षेत्रफल कहते हैं।

जैसे—चार हाथ लम्बे, चार हाथ चौड़े और पाँच हाथ ऊँचे क्षेत्रका खातफल ४×४×५=८० हाथ हुआ।

१६. प्र०—व्यास या परिधि किसे कहते हैं?

उ०—गोलाकार क्षेत्रके बीचमें जितना विस्तार होता है उसे व्यास कहते हैं और गोलाकार क्षेत्रकी गोलाईके प्रमाणको परिधि कहते हैं।

१७. प्र०—परिधि और क्षेत्रफलका क्या नियम है?

उ०—मोटेतौरपर व्याससे तिगुनी परिधि होती है और परिधिको व्यासकी चौथाईसे गुणा करनेपर क्षेत्रफल होता है तथा क्षेत्रफलको ऊँचाई या गहराईसे गुणा करनेपर खातफल होता है।

१८. प्र०—मानके कितने भेद हैं?

उ०—दो भेद हैं—लौकिक मान और लोकोत्तर मान।

१९. प्र०—लौकिक मान किसे कहते हैं?

उ०—लोकमें प्रचलित मानको लौकिक मान कहते हैं। उसके छै भेद हैं—मान, उन्मान, अवमान, गणिमान, प्रतिमान और तत्प्रतिमान। अन्न वगैरह मापनेके बरतनोंको मान कहते हैं। तराजूको उन्मान कहते हैं। चुल्लू वगैरहको अवमान कहते हैं। जैसे—एक चुल्लू जल। एक आदिको गणिमान कहते हैं। जैसे—एक, दो, तीन। गुंजा आदिको प्रतिमान कहते हैं, जैसे—रत्ती, मासा वगैरह। घोड़ेको लम्बाई वगैरह देखकर उसका मूल्य आँकना तत्प्रतिमान है।

२०. प्र०—लोकोत्तर मानके कितने भेद हैं?

उ०—चार भेद हैं—द्रव्यमान, क्षेत्रमान, कालमान और भावमान। एक परमाणु जघन्य द्रव्यमान है और सब द्रव्योंका समूह उत्कृष्ट द्रव्यमान है। एक प्रदेश जघन्य क्षेत्रमान है और समस्त आकाश उत्कृष्ट क्षेत्रमान है। एक समय जघन्य कालमान है और सर्वकाल उत्कृष्ट कालमान है। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवका पर्याय श्रुतज्ञान जघन्य भावमान है और केवलज्ञान उत्कृष्ट भावमान है।

२१. प्र०—द्रव्यमानके कितने भेद हैं?

उ०—दो भेद हैं—संख्यामान और उपमामान।

२२. प्र०—संख्यामानके कितने भेद हैं?

---

१७. त्रि० सा०, गा० १७।

१८-१९. त्रि० सा०, गा० ९।

२०-२१. त्रि० सा०, गा० ११-१२।

२२. संख्यामानके भेदोंका विस्तृत स्वरूप जाननेके लिये त्रि० सा०, गा० १५-५१ देखो।

उ०—तीन भेद हैं—संख्यात, असंख्यात और अनन्त। असंख्यातके तीन भेद हैं—परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यात। अनन्तके भी तीन भेद हैं—परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त। इसतरह सात भेद हुए। इनमेंसे भी प्रत्येकके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टके भेदसे तीन-तीन भेद हैं। इस तरह इक्कीस भेद हुए।

२३. प्र०—उपमा मानके कितने भेद हैं ?

उ०—आठ भेद हैं—पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और लोक।

२४. प्र०—पल्य किसे कहते हैं ?

उ०—पल्य कहते हैं गड्ढेको। उस गड्ढेसे पाये गये कालको भी पल्य या पल्योपम कहते हैं।

२५. प्र०—पल्यके कितने भेद हैं ?

उ०—पल्यके तीन भेद हैं—व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य और अद्धापल्य। बाकीके दो पल्योंके व्यवहारका मूल होनेसे प्रथम पल्यका नाम व्यवहारपल्य है। इसके द्वारा किसीको मापा नहीं जाता। दूसरेका नाम उद्धारपल्य है क्योंकि उससे उद्धृत (निकाले गये) रोमोंके आधारसे द्वीप और समुद्रोंकी गणना की जाती है। तीसरेका नाम अद्धापल्य है। अद्धा कालको कहते हैं अतः इससे मनुष्य, तिर्यञ्च, देव वगैरहकी आयु मापी जाती है।

२६. प्र०—व्यवहारपल्य किसे कहते हैं ?

उ०—प्रमाणांगुलसे मापे गये योजन बराबर लम्बे-चौड़े और गहरे अर्थात् दो हजार कोस गहरे और दो हजार कोस चौड़े गोल गड्ढेमें, एक दिनसे लेकर सात दिन तकके जन्मे हुए मेढ़े के बालोंको, कैंचीसे ऐसा काटकर कि जिसे फिर काटा न जा सके, खूब ठोककर भर दो। यह पहला व्यवहारपल्य है। सौ-सौ वर्षमें एक रोम निकालनेपर जितने समयमें वह गड्ढा खाली हो उतने कालको व्यवहार-पल्योपमकाल कहते हैं।

२७. प्र०—उद्धारपल्य किसे कहते हैं ?

उ०—व्यवहारपल्यके प्रत्येक रोमके बुद्धिके द्वारा इतने टुकड़े करो जितने असंख्यात कोटि वर्षके समय होते हैं और उन्हें दो हजार कोस गहरे और दो हजार कोस चौड़े गोल गड्ढेमें भर दो। उसे उद्धारपल्य कहते हैं। उसमें से प्रति समय एक-एक रोम निकालनेपर जितने समयमें वह खाली हो उतने कालको उद्धारपल्योपम कहते हैं।

२८. प्र०—अद्धापल्य किसे कहते हैं ?

उ०—उद्धारपल्यके प्रत्येक रोमके पुनः इतने टुकड़े करो जितने सौ वर्षमें समय होते हैं और उन्हें पूर्वोक्त प्रमाण गड्ढेमें भर दो। उसे अद्धापल्य कहते हैं। उसमेंसे प्रति समय एक-एक रोम निकालनेपर जितने समयमें वह गड्ढा खाली हो उतने कालको अद्धापल्योपम कहते हैं।

२९. प्र०—अंगुलके कितने भेद हैं ?

उ०—अंगुलके तीन भेद हैं—उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल।

३०. प्र०—उत्सेधांगुल किसे कहते हैं ?

उ०—अनन्तानन्त परमाणुओंके संघातसे एक उत्संज्ञासंज्ञा नामका स्कन्ध उत्पन्न होता है। आठ उत्संज्ञासंज्ञा मिलकर एक संज्ञासंज्ञा नामक स्कन्ध होता है। आठ संज्ञासंज्ञा मिलकर एक त्रुटिरेणु होता है। आठ त्रुटिरेणु मिलकर एक त्रसरेणु होता है। आठ त्रसरेणु मिलकर एक रथरेणु होता है आठ रथरेणु मिलकर एक देवकुरु उत्तरकुरुके मनुष्यके केशका अग्रभाग होता है। उन आठके मिलनेसे एक रम्यक और हरिवर्षके मनुष्यके केशका अग्रभाग होता है। उन आठके मिलनेसे हैरण्यवत और हैमवत क्षेत्रके मनुष्यके केशका अग्रभाग होता है। उन आठके मिलनेसे भरत, ऐरावत और विदेह क्षेत्रके मनुष्यके केशका अग्रभाग होता है। उन आठके मिलनेसे एक लीख होती है। आठ लीखकी एक जूं होती है। आठ जूंका एक यवमध्य होता है और आठ यवमध्यों (जौके बीचके भागों) का एक उत्सेधांगुल होता है।

३१. प्र०—उत्सेधांगुलसे क्या मापा जाता है ?

उ०—उत्सेधांगुलसे देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यञ्चोंके शरीरको ऊँचाई, देवोंके निवास स्थान तथा नगरादि और अकृतिम जिनालयकी प्रतिमाओंकी ऊँचाई मापी जाती है।

३२. प्र०—प्रमाणांगुल किसे कहते हैं ?

उ०—उत्सेधांगुलसे पाँच सौ गुना प्रमाणांगुल होता है। यही अवसर्पिणी कालके प्रथम चक्रवर्ती भरतका आत्मांगुल होता है। उस समय उसीसे ग्राम, नगर आदिका माप किया जाता था।

३३. प्र०—प्रमाणांगुलसे क्या मापा जाता है ?

उ०—द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड, सरोवर और भरत आदि क्षेत्रोंका माप प्रमाणांगुलसे ही होता है।

३४. प्र०—आत्मांगुल किसे कहते हैं ?

---

३२. ति० प्र०, गा० १,११० ।

३४. ति० प्र०, गा० १,१११ ।

उ०—भरत और ऐरावत क्षेत्रमें जिस-जिस कालमें जो मनुष्य हुआ करते हैं उस-उस कालमें उन्हीं मनुष्योंके अंगुलका नाम आत्मांगुल है।

३५. प्र०—आत्मांगुलसे क्या मापा जाता है ?

उ०—झारी, कलश, दर्पण, भेरी, शय्या, गाड़ी, हल, मूसल, अस्त्र, सिंहासन, चमर, छत्र, मनुष्योंके निवास-स्थान, नगर, उद्यान आदिका माप अपने-अपने समयके आत्मांगुलसे होता है।

३६. प्र०—योजन किसे कहते हैं ?

उ०—छै अंगुलका एक पाद, दो पादको एक वितस्ति (बालिश्त), दो वितस्तिका एक हाथ, चार हाथका एक धनुष और दो हजार धनुषका एक योजन होता है।

३७. प्र०—सागर किसे कहते है ?

उ०—दस कोड़ाकोड़ी व्यवहार पल्योंका एक व्यवहार सागरोपम, दस कोड़ाकोड़ी उद्धारपल्योंका एक उद्धार सागरोपम और दस कोड़ाकोड़ी अद्धापल्योंका एक अद्धा सागरोपम होता है।

३८ प्र०—कोड़ाकोड़ी किसे कहते हैं ?

उ०—एक करोड़को एक करोड़से गुणा करनेपर जो लब्ध आये उसे कोड़ाकोड़ी कहते हैं।

३९. प्र०—सूच्यंगुल किसे कहते हैं ?

उ०—अद्धापल्यके जितने अर्द्धच्छेद हों उतनी जगह अद्धापल्यको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उतने आकाश प्रदेशोंकी मुक्तावली करनेपर एक सूच्यंगुल होता है। सो एक अंगुल लम्बे प्रदेशोंका प्रमाण जानना।

४०. प्र०—अर्द्धछेद किसे कहते हैं ?

उ०—किसी राशिके आधा-आधा होनेके वारोंको अर्द्धच्छेद कहते हैं। अर्थात् जो राशि जितनी बार समरूपसे आधी-आधी हो सकती है उसके उतने ही अर्द्धच्छेद होते हैं। जैसे—सोलहके अर्द्धच्छेद चार होते हैं क्योंकि सोलह राशि चार बार आधी-आधी हो सकती है—८, ४, २, १।

४१. प्र०—प्रतरांगुल किसे कहते हैं ?

उ०—सूच्यंगुलके वर्गको प्रतरांगुल कहते हैं।

४२. प्र०—घनांगुल किसे कहते हैं ?

उ०—सूच्यंगुलके घनको घनांगुल कहते हैं। सो एक अंगुल लम्बा, एक अंगुल चौड़ा और एक अंगुल ऊँचा, प्रदेशोंका परिमाण जानना।

४३. प्र०—जगच्छ्रेणी किसे कहते हैं ?

उ०—पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण घनांगुलको रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसे जगच्छ्रेणी कहते हैं। सो सात राजु लम्बी आकाशके प्रदेशोंकी पंक्ति प्रमाण जाननी चाहिये।

४४. प्र०—जगत्प्रतर या प्रतरलोक किसे कहते हैं ?

उ०—जगच्छ्रेणीके वर्गको अर्थात् जगत्श्रेणीको जगत्श्रेणीसे गुणा करने पर जो प्रमाण हो उसे जगत्प्रतर या प्रतरलोक कहते हैं। सो जगच्छ्रेणी प्रमाण लम्बे और चौड़े क्षेत्रमें जितने प्रदेश आयें उतना जानना चाहिये।

४५. प्र०—घनलोक किसे कहते हैं ?

उ०—जगत्श्रेणीके घनको लोक अथवा घनलोक कहते हैं। सो जगत्-श्रेणी प्रमाण लम्बे, चौड़े और ऊँचे क्षेत्रमें जितने प्रदेश आयें उतना जानना चाहिये।

४६. प्र०—राजू किसे कहते हैं ?

उ०—जगत्श्रेणीके सातवें भागको राजू कहते हैं।

●

२

४७. प्र०—लोक किसे कहते हैं ?

उ०—जितने आकाशमें धर्म, अधर्म आदि छै द्रव्य पाये जाते हैं तथा जीव और पुद्गलोंका गमनागमन होता है उतने आकाशको लोक अथवा लोकाकाश कहते हैं।

४८. प्र०—लोक कहाँपर स्थित है ?

उ०—समस्त आकाशके मध्य भागमें लोक स्थित है। उसके बाहर सब ओर अनन्त आकाश है जिसे अलोकाकाश कहते हैं।

४९. प्र०—इस लोकको किसने कब रचा है ?

उ०—यह लोक अकृत्रिम है, किसीका बनाया हुआ नहीं है, इसका न आदि है और न अन्त है, यह सदासे है और सदा रहेगा।

५०. प्र०—लोकका आकार कैसा है ?

उ०—अपने दोनों पैरोंको फैलाकर तथा दोनों हाथ कटि प्रदेशके दोनों ओर रखकर खड़े हुए पुरुषका जैसा आकार होता है वैसा ही लोकका आकार है। अथवा आधे मृदंगको खड़ा करके उसके ऊपर पूरे मृदंगको खड़ा रखनेसे जैसा आकार होता है वैसा ही लोकका आकार है।

५१. प्र०—लोककी मोटाई, चौड़ाई और ऊँचाई कितनी है ?

उ०—लोककी मोटाई उत्तर और दक्षिण दिशामें सर्वत्र सात राजू है, चौड़ाई पूरब और पश्चिम दिशामें नीचे जड़में सात राजू है। ऊपर क्रमसे घटकर सात राजूकी ऊँचाई और चौड़ाई एक राजू है। फिर क्रमसे बढ़कर साढ़े दस राजूकी ऊँचाईपर चौड़ाई पांच राजू है। फिर क्रमसे घटकर चौदह राजूकी ऊँचाईपर चौड़ाई एक राजू है तथा नीचेसे ऊपर तक ऊँचाई चौदह राजू है।

५२. प्र०—लोकके कितने भेद हैं ?

उ०—लोकके तीन भेद हैं—अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक। अधोलोककी ऊँचाई सात राजू है, मध्यलोककी ऊँचाई एक लाख योजन है और ऊर्ध्वलोककी ऊँचाई एक लाख योजन कम सात राजू है।

५३. प्र०—अधोलोकका विशेष स्वरूप क्या है ?

उ०—आधे मृदंगके आकार अधोलोकमें नीचे-नीचे क्रमसे रत्नप्रभा शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये सात पृथिवियाँ एक-एक राजूके अन्तरालसे हैं। इनका रूढ़ि नाम क्रमसे घर्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी है। इन पृथिवियोंमें क्रमसे तीस लाख, पच्चीस लाख, दस लाख, तीन लाख, पांच कम एक लाख और पांच, इस तरह चौरासी लाख नरक विल हैं। पहली पृथिवीसे लेकर पांचवीं पृथिवीके तीन चौथाई भाग पर्यन्त तो अति गर्मी है और पाचवीं पृथिवीके शेष चतुर्थ भागमें तथा छठीं और सातवीं पृथिवीमें अतिठंड है। इनमें रहने वाले नारकियोंको क्षणभरके लिये भी सुख नहीं मिलता।

५४. प्र०—नारकियोंकी आयु कितनी होती है ?

उ०—सातों नरकोंमें क्रमसे एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तेंतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है तथा जघन्य स्थित प्रथम नरकमें दस हजार वर्ष है और आगेके नरकोंमें अपनेसे पहले नरकमें जो उत्कृष्ट स्थिति है वही उनमें जघन्य स्थिति है।

५५. प्र०—नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई कितनी है ?

उ०—प्रथम नरकमें शरीरकी ऊँचाई सात धनुष तीन हाथ छै अंगुल है, आगेके नरकोंमें यह ऊँचाई दूनी-दूनी है।

५६. प्र०—नरकसे निकला हुआ जीव कहाँ जन्म लेता है ?

उ०—नरकसे निकला हुआ जीव मनुष्य और तिर्यञ्च गतिमें ही जन्म लेता है तथा कर्मभूमिमें सैनी पर्याप्तक और गर्भज ही होता है, भोगभूमिमें

जन्म नहीं लेता और न असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक होता है। किन्तु सातवें नरकसे निकला हुआ जीव संज्ञी पर्याप्तक गर्भज तिर्यञ्च ही होता है मनुष्य नहीं होता।

५७. प्र०—नरकसे निकलकर जीव क्या-क्या नहीं होता ?

उ०—नरकसे निकला हुआ जीव मनुष्य पर्यायमें जन्म लेनेपर भी नारायण, बलभद्र और चक्रवर्ती नहीं हो सकता तथा चौथे आदि नरकोंसे निकला हुआ तीर्थङ्कर भी नहीं होता। पाँचवीं आदि नरकोंसे निकला हुआ जीव मोक्ष नहीं जा सकता। छठीं आदि नरकोंसे निकला हुआ मुनि पद धारण नहीं कर सकता और सातवें नरकसे निकला हुआ पहले गुणस्थानमें ही रहता है, ऊपरके गुणस्थानोंमें नहीं चढ़ता।

५८. प्र०—कौन जीव किस नरक तक जन्म ले सकता है ?

उ०—असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय प्रथम नरक तक, सरीसृप दूसरे नरक तक, पक्षी तीसरे नरक तक, सर्प चौथे तक, सिंह पाँचवें तक, स्त्री छठें तक और मनुष्य तथा मत्स्य सातवें नरक तक जन्म ले सकते हैं।

५९. प्र०—मध्यलोकका विशेष स्वरूप क्या है ?

उ०—मध्यलोकके बीचोबीच एक लाख योजन चौड़ा और थालीकी तरह गोल जम्बूद्वीप है। जम्बूद्वीपके बीचमें एक लाख योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है। एक हजार योजन जमीनके भीतर इसका मूल है। निन्यानबे हजार योजन पृथिवीके ऊपर है और चालीस योजनकी इसकी चूलिका (चोटी) है। तीनों लोकोंका मापक होनेसे इसे मेरु कहते हैं। मेरुके नीचे अधोलोक है, मेरुके ऊपर लोकके अन्त पर्यन्त ऊर्ध्वलोक है और मेरुकी ऊँचाईके बराबर मध्यलोक है। जम्बूद्वीपके बीचमें पश्चिम पूरब लम्बे छै कुलाचल (पर्वत) पड़े हुए हैं उनसे जम्बूद्वीपके सात खण्ड हो गये हैं। प्रत्येक खण्डमें एक-एक क्षेत्र है। उनके नाम इस प्रकार हैं—भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत। भरत क्षेत्रका विस्तार उत्तर-दक्षिण पाँच सौ छब्बीस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे छै भाग है। भरत क्षेत्रके बीचमें पश्चिम पूरब लम्बा विजयार्ध पर्वत पड़ा हुआ है। उससे भरत के दो भाग हो गये हैं—एक उत्तर भरत और एक दक्षिण भरत। हिमवान पर्वतसे निकलकर गंगा और सिन्धु नामकी नदियाँ उत्तर भरत क्षेत्रमेंसे बहती हुई विजयार्ध पर्वतकी गुफाओंसे निकलकर दक्षिण भारतमें बहती हैं और लवण समुद्रमें मिल जाती हैं। उनके कारण भरत क्षेत्रके छै खण्ड हो गये हैं। भरत क्षेत्रसे

---

५७. त्रि० सा०, गा० २०४।

दूना विस्तार हिमवान् पर्वतका है और हिमवान से दूना विस्तार हैमवत क्षेत्रका है। इस तरह विदेह क्षेत्र तक दूना-दूना विस्तार होता जाता है और फिर आगे आधा-आधा विस्तार होता जाता है। विदेह क्षेत्रके बीचमें मेरु पर्वत है, मेरुसे उत्तर तरफ उत्तरकुरु है और दक्षिण तरफ देवकुरु है। जम्बूद्वीपको चारों तरफसे खाईकी तरह बेढ़े हुए दो लाख योजन चौड़ा लवण समुद्र है। लवण समुद्रको चारों तरफसे बेढ़े हुए चार लाख योजन चौड़ा धातकीखण्ड द्वीप है। इस धातकीखण्ड द्वीपमें उत्तर और दक्षिणकी ओर उत्तर दक्षिण लम्बे दो इष्वाकार पर्वत खड़े हुए हैं। उनसे विभक्त हो जानेसे इस द्वीपके दो भाग हो गये हैं—एक पूर्व धातकीखण्ड और दूसरा पश्चिम धातकीखण्ड। दोनों भागोंके बीचमें एक-एक मेरु पर्वत हैं और उनकी दोनों ओर क्षेत्र कुलाचलवगैरहकी रचना जम्बूद्वीपकी तरह है। इस तरह धातकीखण्डमें सब रचना जम्बूद्वीप से दूनी है। धातकीखण्ड को चारों तरफ से बेढ़े हुए आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है और कालोदधिको बेढ़े हुए सोलह लाख योजन चौड़ा पुष्करद्वीप है। पुष्करद्वीपके बीचोबीच चूड़ीके आकारका मानुषोत्तर नामा पर्वत पड़ा हुआ है जिससे पुष्करद्वीपके दो खण्ड होगये हैं। पुष्कर द्वीपके पूर्वार्ध भागमें धातकीखण्डकी तरह ही सब रचना है। जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्धद्वीप तथा लवणोदधिसमुद्र और कालोदधि समुद्र इतने क्षेत्रको मनुष्य लोक कहते हैं; क्योंकि मानुषोत्तर पर्वतसे आगे मनुष्योंका वास नहीं है। पुष्करद्वीपसे आगे परस्पर एक दूसरेको बेढ़े हुए दूने-दूने विस्तारवाले मध्यलोकके अन्त पर्यन्त असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। सबके अन्तमें स्वयं भूरमण नामका द्वीप और उसको घेरे हुए स्वयम्भूरमण नामका समुद्र है।

६०. प्र०—कर्मभूमि किसे कहते हैं ?

उ०—जहाँ असि, मषि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन छै कर्मोंकी प्रवृत्ति हो उसे कर्मभूमि कहते हैं।

६१. प्र०—कर्मभूमियाँ कितनी हैं ?

उ०—पाँच मेरु सम्बन्धी, पाँच भरत, पांच ऐरावत और देवकुरु उत्तरकुरुको छोड़कर पाँच विदेह इस प्रकार सब मिलाकर १५ कर्मभूमियाँ हैं।

६२. प्र०—भोगभूमि किसे कहते हैं ?

उ०—जहाँ दस प्रकारके कल्पवृक्षोंसे प्राप्त भोगोंको ही भोगा जाता है और छै कर्मोंकी प्रवृत्ति नहीं है उसे भोगभूमि कहते हैं।

६३. प्र०—भोगभूमियाँ कितनी हैं ?

उ०—सब भोगभूमियाँ तीस हैं। जिनमेंसे पाँच मेरु सम्बन्धित, पाँच हैमवत और पाँच हैरण्यवत इन दस क्षेत्रोंमें जघन्य भोगभूमि है। पाँच हरि और पाँच रम्यक इन दस क्षेत्रोंमें मध्यम भोगभूमि है। पाँच देवकुरु और पाँच उत्तरकुरु इन दस क्षेत्रोंमें उत्तम भोगभूमि है।

६४. प्र०—क्या भरतादि क्षेत्रोंमें सदा एक सी ही अवस्था रहती है ?

उ०—भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालके छै समयोंके द्वारा परिवर्तन हुआ करता है। शेष क्षेत्रोंमें सदा एक-सा ही काल बरतता है।

६५. प्र०—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल किसे कहते हैं ?

उ०—जिस कालमें मनुष्य और तिर्यञ्चोंकी आयु, शरीरकी ऊँचाई और विभूति आदि घटते रहते हैं उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं और जिस कालमें ये बढ़ते रहते हैं उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं।

६६. प्र०—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालके छै भेद कौन से हैं ?

उ०—सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमा दुषमा, दुषमा सुषमा, दुषमा और अतिदुषमा ये छै अवसर्पिणी कालके भेद हैं और अतिदुषमासे सुषमासुषमा पर्यन्त छै भेद उत्सर्पिणी कालके हैं।

६७. प्र०—भरतक्षेत्रमें परिवर्तनका क्रम कैसा है ?

उ०—सुषमासुषमा कालके आदिमें भरतक्षेत्रमें उत्तम भोगभूमि रहती है। सुषमासुषमा कालका प्रमाण चार कोड़ाकोड़ी सागर है। फिर क्रमसे हानि होते होते सुषमा कालका आरम्भ होता है। उसमें मध्यम भोगभूमि रहती है उसका प्रमाण तीन कोड़ाकोड़ी सागर है। फिर क्रमसे हानि होते होते सुषमादुषमा काल आरम्भ होता है उसमें जघन्य भोगभूमि रहती है। तीसरे कालमें एक पल्योपमका आठवाँ भाग शेष रहनेपर कुलकर उत्पन्न होते हैं जो भोगभूमिसे कर्मभूमि होते समय जो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं उन्हें दूर करके जनताका उपकार करते हैं। अन्तिम कुलकरके पश्चात् यहाँ चौथा दुषमासुषमा काल बरतने लगता है और कर्मभूमिका आरम्भ होता है। इस कालमें यहाँ त्रेसठ शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं। वीर भगवान्का निर्वाण होनेके पश्चात् तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष बीतने पर पाँचवें दुषमाकालका प्रवेश होता है। उसका प्रमाण इक्कीस हजार वर्ष है। इस कालमें धर्म वगैरहका ह्रास होता जाता है। जब इस कालमें तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष रहते हैं तो अन्तिम मुनि आर्यिका श्रावक और श्राविकाका मरण होता है और धर्मका उच्छेद हो जाता है। तब अतिदुषमा

नामका छठा काल आता है, वह भी इक्कीस हजार वर्षका होता है। इस कालमें उनचास दिन शेष रहनेपर भरत क्षेत्रमें प्रलयकाल आ जाता है। प्रलयकाल उनचास दिनके बीतनेपर अवसर्पिणीकाल समाप्त हो जाता है और उत्सर्पिणीकाल प्रवेश करता है। इसके आरम्भमें ४९ दिनतक सुहावनी वर्षा होती है जिससे प्रलयकालमें जली हुई पृथ्वी शीतल हो जाती है और पहाड़ों की गुफाओंमें छिपे हुए स्त्री-पुरुष फिरसे इसपर बसना आरम्भ कर देते हैं। उत्सर्पिणीके प्रथम अतिदुषमा कालके बीत जानेपर दूसरा दुषमाकाल आरम्भ होता है। इस कालमें एक हजार वर्ष शेष रहनेपर भरत क्षेत्रमें चौदह कुलकर उत्पन्न होते हैं। जो मनुष्योंको अग्नि जलाना और उसपर भोजन पकानेकी शिक्षा देते हैं तथा विवाहकी प्रथा प्रचलित करते हैं। फिर तीसरा दुषमासुषमा काल प्रवेश करता है। इस कालमें पुनः त्रेसठ शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं। तीसरे कालके बीतनेपर चौथा सुषमादुषमाकाल प्रवेश करता है उस समय यहाँ जघन्य भोगभूमि हो जाती है। इसके पश्चात् पाँचवाँ सुषमाकाल प्रविष्ट होता है उस समय मध्यम भोगभूमि होती है। फिर सुषमासुषमा नामक छठाँ काल प्रवेश करता है तब उत्तम भोगभूमि हो जाती है। उत्सर्पिणी कालके बीतनेपर पुनः अवसर्पिणी काल आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार भरत और ऐरावत क्षेत्रमें अवसर्पिणीके पश्चात् उत्सर्पिणी और उत्सर्पिणीके पश्चात् अवसर्पिणीका क्रम चला करता है। असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी बीतनेपर एक हुण्डावसर्पिणीकाल आता है जिसमें कुछ विचित्र बातें होती हैं।

६८. प्र०—हुण्डावसर्पिणीके चिह्न क्या हैं ?

उ०—हुण्डावसर्पिणी कालमें तीसरे सुषमादुषमा कालके रहते हुए ही कर्मभूमिका आरम्भ होने लगता है। उस कालमें प्रथम तीर्थङ्कर और प्रथम चक्रवर्ती भी उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ जीव मोक्ष भी चले जाते हैं। चक्रवर्ती का मान भंग होता है, वह एक नये वर्ण ब्राह्मणकी रचना करता है। चौथे दुषमासुषमा कालमें ६३ मेंसे ५८ शलाका पुरुष ही जन्म लेते हैं। नौवेंसे सोलहवें तीर्थङ्कर तक सात तीर्थङ्करोंके तीर्थमें धर्मका विच्छेद हो जाता है। सातवें, तेईसवें और अन्तिम तीर्थङ्करपर उपसर्ग होता है। ग्यारह रुद्र और नौ नारद होते हैं। पाँचवें दुषमा कालमें चाण्डाल आदि जातियाँ तथा कल्की उपकल्की होते हैं ये अनेक नई बातें हुण्डावसर्पिणी कालमें होती हैं।

६९. प्र०—त्रेसठ शलाका पुरुष किन्हें कहते हैं ?

---

६८. ति० प०, अधि० ४, गा० १६१६-१६२३।

उ०—चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण ये त्रेसठ शलाका पुरुष अर्थात् गणनीय महापुरुष कहे जाते हैं।

७०. प्र०—चौबीस तीर्थङ्करोंके नाम क्या हैं ?

उ०—ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्द्धमान ये भरत क्षेत्रमें उत्पन्न हुए चौबीस तीर्थङ्करोंके नाम हैं।

७१. प्र०—चौबीस तीर्थङ्करोंका जन्म स्थान कहाँ है ?

उ०—ऋषभनाथ, अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ और अनन्त नाथका जन्मस्थान अयोध्या है। संभवनाथका जन्मस्थान श्रावस्ती नगरी है, पद्मप्रभका जन्मस्थान कौशाम्बी है, सुपार्श्व और पार्श्वनाथका जन्मस्थान वाराणसी (बनारस) है, चन्द्रप्रभका जन्मस्थान चन्द्रपुरी और श्रेयांसनाथका जन्मस्थान सिंहपुरी (बनारसके पास सारनाथ) है। पुष्पदन्तका जन्म स्थान काकन्दी, शीतलनाथका भद्दलपुर (भेलसा), वासुपूज्यका चम्पानगरी, विमल नाथका कंपिला, धर्मनाथका रत्नपुरी (अयोध्याके पास), शान्ति, कुन्थु और अरनाथका हस्तिनापुर, मल्लिनाथ और नमिनाथका मिथिलापुरी, नेमिनाथका शौरीपुर (बटेश्वरके पास), मुनिसुव्रतनाथका राजगृह और वर्धमानका जन्मस्थान कुण्डलपुर है।

७२. प्र०—चौबीस तीर्थङ्करोंके निर्वाणस्थान कौनसे हैं ?

उ०—भगवान् ऋषभदेवका निर्वाणस्थान कैलासपर्वत है, वासुपूज्यका चम्पापुर, नेमिनाथका गिरनारपर्वत और महावीर वर्द्धमानका निर्वाणस्थान पावापुरी है। शेष तीर्थङ्करोंको निर्वाण-भूमि सम्मेदशिखर पर्वत है।

७३. प्र०—ऊर्ध्वलोकका विशेष स्वरूप क्या है ?

उ०—मेरुसे लेकर सात राजू ऊँचा ऊर्ध्वलोक है। उसमें छै राजूकी ऊँचाई में सोलह स्वर्ग हैं। सो मेरुतलसे लेकर डेढ़ राजूकी ऊँचाईमें सौधर्म और ईशान स्वर्ग हैं। उनके इकतीस पटल हैं। सो मेरुकी चोटीसे एक बालके अग्र भाग बराबर अन्तराल छोड़कर प्रथम पटल है। उसके ऊपर असंख्यात योजन-का अन्तराल छोड़कर दूसरा पटल है। इसी तरह असंख्यात असंख्यात योजन-का अन्तराल छोड़कर ऊपर-ऊपर पटल हैं। प्रत्येक पटलके बीचमें जो एक विमान होता है उसे इन्द्रकविमान कहते हैं। सो मेरुके ऊपर ऋतु नामका इन्द्रकविमान है। उसीकी सीधमें ऊपर-ऊपर प्रत्येक पटलमें एक-एक इन्द्रक विमान जानना चाहिये। प्रत्येक पटलमें उस इन्द्रकविमानकी चारों दिशाओंमें

पंक्तिबद्ध विमान हैं उन्हें श्रेणिबद्ध कहते हैं तथा उन श्रेणिबद्ध विमानोंके बीच, में विदिशाओंमें जो विमान बिखेरे हुए फूलोंकी तरह स्थित हैं उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं। प्रत्येक पटल सम्बन्धी उत्तर दिशाके श्रेणिबद्ध विमान और वायव्य तथा ईशान विदिशाके प्रकीर्णकविमान ईशान इन्द्रके अधीन हैं, अतः उन्हें ईशान स्वर्ग कहते हैं और शेष सब इन्द्रकविमान, तीन दिशाके श्रेणिबद्ध विमान और नैऋत्य तथा आग्नेय विदिशाके प्रकीर्णक विमान सौधर्मेन्द्रके अधीन हैं। अतः उन्हें सौधर्म स्वर्ग कहते हैं। सौधर्म ऐशान युगलसे ऊपर डेढ़ राजूकी ऊँचाईमें सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग हैं। इनके सात पटल हैं। सो सौधर्म युगलके अन्तिम पटलसे असंख्यात योजन ऊपर प्रथम पटल है। उसके ऊपर असंख्यात असंख्यात योजनका अन्तराल छोड़ छोड़कर द्वितीय आदि पटल हैं। इनमें भी उक्त प्रकारसे इन्द्रक आदि विमान हैं। उनमेंसे उत्तर दिशाके श्रेणिविमान और वायव्य तथा ईशान कोणके प्रकीर्णक विमान उत्तरेन्द्र महेन्द्रके अधीन हैं अतः उन्हें माहेन्द्र स्वर्ग कहते हैं। शेष विमान दक्षिणेन्द्र सनत्कुमारके अधीन हैं अतः उन्हें सानत्कुमार स्वर्ग कहते हैं। इस तरह ऊपर-ऊपर अन्य युगल तथा उनके पटल जानना। इतना विशेष है कि सानत्कुमार युगलसे ऊपर शेष छै युगल आधे-आधे राजूमें स्थित हैं। इस तरह छै राजूमें सोलह स्वर्ग हैं तथा ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल, लान्तवकापिष्ठ युगल, शुक्र-महाशुक्र युगल और शतार-सहस्रार युगलोंमें एक-एक ही इन्द्र है तथा आनत-प्राणत युगल और आरण-अच्युत युगलोंमें दो-दो इन्द्र हैं। उनमें आनत और आरण दक्षिणेन्द्र हैं तथा प्राणत और अच्युत उत्तरेन्द्र हैं। आरण अच्युत स्वर्गके अन्तसे ऊपर एक राजूकी ऊँचाई में कल्पातीत देव रहते हैं। उनमें सबसे प्रथम ग्रैवेयक हैं। ग्रैवेयकके तीन विभाग हैं—अधोग्रैवेयक, मध्यग्रैवेयक और उपरिम ग्रैवेयक। प्रत्येकके तीन-तीन पटल हैं। सो अच्युत स्वर्गके अन्तसे ऊपर असंख्यात योजन अन्तराल छोड़कर अधोग्रैवेयकका प्रथम पटल है। उसके ऊपर इसी तरह अन्तराल छोड़-छोड़कर ऊपर-ऊपर पटल हैं। उपरिम ग्रैवेयकके अन्तिम पटलसे ऊपर असंख्यात योजन अन्तराल छोड़कर नौ अनुदिश विमान हैं। सो बीचमें एक इन्द्रकविमान है, चारों दिशाओंमें चार श्रेणिबद्ध विमान हैं और चारों विदिशाओंमें चार प्रकीर्णकविमान हैं। उनसे असंख्यात योजन ऊपर पाँच अनुत्तरविमान हैं। उनके बीचमें सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रकविमान है और चारों दिशाओंमें विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक चार श्रेणिविमान हैं। पाँच अनुत्तरोंसे बारह योजन ऊपर सिद्धक्षेत्र है।

७४. प्र०—स्वर्गोंमें देवांगनाओंकी उत्पत्ति कहाँ होती है ?

उ०—सब कल्पवासिनी देवांगनाएँ सौधर्म और ईशान स्वर्गमें ही उत्पन्न

होती हैं। पीछे वे जिन देवोंकी नियोगिनी होती हैं वे देव उन्हें अपने-अपने स्वर्गोंमें ले जाते हैं।

७५. प्र०—स्वर्गोंमें जन्म और मरणका अन्तर काल कितना है ?

उ०—यदि किसी स्वर्गमें किसीका जन्म न हो या कोई न मरे तो उसका उत्कृष्ट विरह काल क्रमसे सौधर्म युगलमें सात दिन, दूसरे युगलमें एक पक्ष, फिर चार स्वर्गोंमें एक मास, फिर चार स्वर्गोंमें दो मास, फिर चार स्वर्गोंमें छै मास और शेषग्रैवेयक वगैरहमें छै मास जानना।

७६. प्र०—स्वर्गोंमें देवांगनाओंकी आयुका प्रमाण कितना है ?

उ०—सौधर्म आदि सोलह स्वर्गोंमें देवांगनाओंकी उत्कृष्ट आयु क्रमसे पाँच, सात, नौ, ग्यारह, तेरह, पन्द्रह, सत्रह, उन्नीस, इक्कीस, तेईस, पच्चीस, सत्ताईस, चोंतीस, इकतालीस, अड़तालिस और पचपन पल्य है और जघन्य आयु सौधर्म युगलमें कुछ अधिक एक पल्य है।

७७. प्र०—स्वर्गोंमें देवोंकी आयुका प्रमाण कितना है ?

उ०—सौधर्म युगलमें देवोंकी जघन्य आयु एक पल्यसे कुछ अधिक है। उत्कृष्ट आयु सौधर्म युगलमें कुछ अधिक दो सागर, सानत्कुमार माहेन्द्र कल्पमें कुछ अधिक सात सागर, ब्रह्म ब्रह्मोत्तरमें कुछ अधिक दस सागर, लांतव कापिष्ठ स्वर्गमें कुछ अधिक चौदह सागर, शुक्र महाशुक्रमें कुछ अधिक सोलह सागर, शतार सहस्रारमें कुछ अधिक अठारह सागर, आनत प्राणतमें बीस सागर और आरण अच्युतमें बाईस सागर है। इससे आगे नौग्रैवेयकोंमें क्रमसे तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है। नौ अनुदिशोंमें बत्तीस सागर और पाँच अनुत्तरोंमें तैंतीस सागर उत्कृष्ट आयु है तथा नीचेके युगलमें जो उत्कृष्ट आयु है, वही एक समय अधिक ऊपरके युगलमें जघन्य आयु है।

७८. प्र०—सहस्रारस्वर्ग तक ही कुछ अधिक आयु होनेका कारण क्या है ?

उ०—जो सम्यग्दृष्टि घातायुष्क होता है उसके अपने-अपने स्वर्गकी उत्कृष्ट आयुसे अन्तर्मुहूर्त कम आधा सागर प्रमाण आयु अधिक होती है और ऐसा जीव सहस्रारस्वर्ग पर्यन्त ही जन्म लेता है।

७९. प्र०—घातायुष्क किसे कहते हैं ?

उ०—जिस जीवने पूर्वभवमें आयुका बंध किया, पीछे वह आयु घटकर थोड़ी रह गयी उस जीवको घातायुष्क कहते हैं।

---

७५. त्रि० सा०, गा० ५४२।

८०. प्र०—लौकान्तिक देवोंका विशेष स्वरूप क्या है ?

उ०—लौकान्तिक देव ब्रह्मलोक स्वर्गके अन्तमें रहते हैं, सब समान होते हैं, ब्रह्मचारी होनेसे देवर्षिके तुल्य माने जाते हैं। अन्य देव उनकी पूजा करते हैं, तीर्थङ्करोंके तपकल्याणकके समय उन्हें प्रतिबोधन करनेके लिए जाते हैं। इनकी आयु आठ सागर होती है।

८१. प्र०—स्वर्गसे चयकर निर्वाण पानेवाले देव कौन कौन हैं ?

उ०—सौधर्म स्वर्गका इन्द्र, उसकी पट्टदेवी शची, उसके चारों लोकपाल, सानत्कुमार आदि सब दक्षिण इन्द्र, सब लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धिके सब देव वहाँसे चयकर मनुष्य हो, नियमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं।

८२. प्र०—कौन जीव किस स्वर्ग तक जन्म ले सकता है ?

उ —असंयत या देशसंयत मनुष्य और असंयत तथा देशसंयत तिर्यञ्च अधिकसे अधिक १६वें स्वर्ग तक जन्म लेते हैं। द्रव्यलिंगी निर्ग्रन्थ साधु उपरिम ग्रैवेयक तक जन्म ले सकते हैं। सम्यग्दृष्टि महाव्रती सर्वार्थसिद्धि तक जन्मले सकते हैं। सम्यग्दृष्टि भोगभूमियाँ जीव सौधर्म युगल तक और मिथ्यादृष्टि भोगभूमियाँ जीव भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें जन्म लेते हैं। पञ्चाग्नितप तपनेवाले तपस्वी अधिकसे अधिक भवनवासी आदि तीन प्रकारके देवोंमें जन्म लेते हैं। चरक और परिव्राजक संन्यासी ब्रह्मस्वर्ग तक तथा आजीवक सम्प्रदायके साधु सोलहवें स्वर्ग तक जन्म ले सकते हैं।

८३. प्र०—देवोंके विशेष भेद कौनसे हैं ?

उ०—देवोंके चार भेद हैं—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक।

८४. प्र०—भवनवासी देवोंके कितने भेद हैं ?

उ०—भवनवासी देवोंके दस भेद हैं—असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार।

८५. प्र०—भवनवासी देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—रत्नप्रभा पृथिवीके पङ्कबहुल भागमें असुरकुमारोंके भवन हैं और खरभागमें शेष नौ कुमारोंके भवन हैं। भवनोंमें रहनेके कारण इन्हें भवनवासी कहते हैं।

८६. प्र०—भवनवासी देवोंकी आयु कितनी है ?

उ०—असुरकुमारोंकी एक सागर, नागकुमारोंकी तीन पल्य, सुपर्णकुमारों की अढ़ाई पल्य, द्वीपकुमारोंकी दो पल्य तथा शेष छै कुमारोंकी डेढ़-डेढ़ पल्य उत्कृष्ट आयु होती है तथा सबकी जघन्य आयु दस हजार वर्ष है।

८७. प्र०—व्यन्तर देवोंके कितने भेद हैं ?

उ०—आठ भेद हैं—किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच।

८८. प्र०—व्यन्तर देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—विविध देशान्तरोंमें रहनेवाले देवोंको व्यन्तर कहते हैं। सो यों तो चित्रा और वज्रा पृथिवीके मध्यसे लेकर मेरु पर्वतकी ऊँचाई पर्यन्त मध्य-लोकमें व्यन्तरोंका निवास है किन्तु रत्नप्रभा पृथिवीके पंकबहुल भागमें राक्षस और खर पृथिवी भागमें शेष सात प्रकार के व्यन्तर रहते हैं।

८९. प्र०—व्यन्तर देवों की आयु कितनी है ?

उ०—व्यन्तर देवोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे अधिक है और जघन्य आयु दस हजार वर्ष है।

९०. प्र०—ज्योतिष्क देवोंके कितने भेद हैं ?

उ०—ज्योतिष्क देवोंके पाँच भेद हैं—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारा। चूंकि ये ज्योति (चमक) वाले होते हैं, इसलिये इन्हें ज्योतिष्क कहते हैं।

९१. प्र०—ज्योतिष्क देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—चित्रा पृथिवीसे सात सौ नब्बे योजन ऊपर तारे हैं। तारोंसे दस योजन ऊपर सूर्य है। सूर्यसे अस्सी योजन ऊपर चन्द्रमा है। चन्द्रमासे चार योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रोंसे चार योजन ऊपर बुध है। बुधसे तीन योजन ऊपर शुक्र है। शुक्रसे तीन योजन ऊपर बृहस्पति है। बृहस्पतिसे तीन योजन ऊपर मंगल है। मंगलसे तीन योजन ऊपर शनैश्चर है। इस तरह चित्रासे सात सौ नब्बे योजन ऊपरसे लेकर नौसौ योजन पर्यन्त एक सौ दस योजनकी मोटाइमें ज्योतिष्क देव रहते हैं।

९२. प्र०—ज्योतिष्क देवोंके विमानोंका आकार आदि कैसा है ?

उ०—गोल नींबूको बीचमेंसे काटकर आधे भागको चौड़ा भाग ऊपरकी ओर करके रखनेसे जैसा आकार होता है वैसा ही आकार सब ज्योतिष्क विमानोंका है। सो चन्द्रमाके विमानका व्यास एक योजनके इकसठ भागोंमेंसे छप्पन भाग है और सूर्यके विमानका व्यास अड़तालीस भाग है। राहु और केतुके विमानका व्यास कुछ कम एक योजन है। ये दोनों विमान क्रमसे चन्द्रमा और सूर्यके विमानके नीचे चलते हैं और छे मास बीतने पर पर्वके दिन चन्द्रमा और सूर्यको ढक लेते हैं। इसीका नाम ग्रहण है।

९३. प्र०—एक चन्द्रमाका परिवार कितना है ?

उ०—एक चन्द्रमाके परिवारमें एक सूर्य, ८८ ग्रह, अठ्ठाईस नक्षत्र और छियासठ हजार नौसौ पचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे हैं।

९४. प्र०—ज्योतिष्क देवोंका विशेष स्वरूप क्या है ?

उ०—मनुष्य लोक अर्थात् अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रोंमें ज्योतिष्क विमान मेरुपर्वतसे ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर रहकर सदा उसके चारों ओर घूमा करते हैं। इनके घूमनेसे ही दिन रात होता है। सूर्यका गमन क्षेत्र एक सौ अस्सी योजन जम्बूद्वीपमें है और तीन सौ तीस योजन लवणसमुद्रमें है। एक सौ तिरासी दिनमें सूर्य अपने गमन क्षेत्रको पूरा करता है। श्रावण मासमें सूर्य एकदम अन्दर होता है और फिर बाहरकी ओर गमन करना प्रारम्भ कर देता है, इसीको दक्षिणायन कहते हैं। माघ मासमें सूर्य एकदम बाहर होता है और फिर बाहरसे अन्दरकी ओर आना शुरू करता है। इसीको उत्तरायण कहते हैं। जब सूर्य एकदम अभ्यन्तरमें होता है तब १८ मुहूर्त (करीब साढ़े चौदह घंटे) का दिन और बारह मुहूर्त (साढ़े नौ घंटे) की रात होती है और जब एकदम बाहर होता है तो १८ मुहूर्तकी रात और बारह मुहूर्तका दिन होता है। प्रचलित चान्द्रमासके अनुसार इकसठवें दिन एक तिथिके घटनेसे वर्षमें तीन सौ चौवन दिन होते हैं जबकि सौर मासके हिसाबसे वर्षमें तीन सौ छियासठ दिन होते हैं। अतः वर्षमें बारह दिन बढ़नेसे अढ़ाई वर्ष बीतनेपर एक मास अधिक होता है और वर्षमें तेरह मास होते हैं। मनुष्य लोकसे बाहर भी ज्योतिष्क देव हैं किन्तु वे चलते नहीं हैं, स्थिर हैं।

९५. प्र०—ज्योतिष्क देवोंकी आयु कितनी है ?

उ०—ज्योतिष्क देवोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे अधिक है और जघन्य आयु पल्यके आठवें भाग है।

९६. प्र०—सिद्धोंका क्षेत्र कहाँ पर है ?

उ०—तीनों लोकोंके ऊपर ईषत्प्राग्भार नामको आठवीं पृथिवी है, उसके मध्यमें श्वेत छत्रके आकारका गोल और मनुष्य लोकके समान पैंतालीस लाख योजन चौड़ा सिद्धक्षेत्र है। उसके ऊपर तनुवातवलयमें सिद्ध भगवान् विराजमान रहते हैं।

९७. प्र०—वातवलयका स्वरूप क्या है ?

उ०—जैसे वृक्षको छाल होती है वैसे ही लोकको घेरे हुए वातवलय हैं—वलयके आकार वायु हैं। वे तीन हैं—लोकके घेरे हुए घनोदधिवातका वलय है, उसके ऊपर घनवातका वलय है और उसके ऊपर तनुवातका वलय है। लोकके नीचे और पार्श्वोंमें नीचेसे लगाकर एक राजूकी ऊँचाई पर्यन्त एक-

एक वातवलय बीस-बीस हजार योजन मोटा है और एक राजूसे ऊपर एक साथ घटकर तीनों वातवलयोंकी मोटाई क्रमसे सात, पाँच और चार योजन है। फिर क्रमसे घटता हुआ मध्यलोकके निकट तीनोंका बाहुल्य क्रमसे पांच, चार और तीन योजन है। फिर क्रमसे बढ़ते हुए ब्रह्मलोकके निकटमें तीनोंका बाहुल्य क्रमसे सात, पाँच और चार योजन है। फिर क्रमसे घटते हुए ऊर्ध्व-लोकके निकटमें तीनोंका बाहुल्य क्रमसे पाँच, तीन और चार योजन है।

९८. प्र०—त्रसनालीका स्वरूप क्या है?

उ०—लोकके मध्यमें त्रसनाली है। लोकके नीचेसे लेकर लोकके ऊपर अन्तपर्यन्त चौदह राजू ऊँची है और एक राजू लम्बी तथा एक राजू चौड़ी है। त्रस जीव इसीमें रहते हैं, इसीसे इसे त्रसनाली कहते हैं। इसके बाहर शेष लोकमें स्थावर जीव ही पाये जाते हैं।

९९. प्र०—तिर्यञ्च कहाँ रहते हैं?

उ०—तिर्यञ्चोंमें एकेन्द्रिय जीव तो सर्वलोकमें रहते हैं, विकलत्रय (दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीव) कर्मभूमिमें और अन्तके आधे द्वीप तथा अन्तके स्वयंभूरमण समुद्रमें ही रहते हैं तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मध्य-लोकमें रहते हैं। किन्तु जलचर तिर्यञ्च लवणसमुद्र, कालोदधि समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्रके सिवाय अन्य समुद्रोंमें नहीं हैं।

१००. प्र०—मनुष्य कहाँ रहते हैं?

उ०—मनुष्य केवल मनुष्यलोक, जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, धातकीखण्ड, कालोदधि और पुष्करार्धद्वीपमें ही रहते हैं।

●

३

१०१. प्र०—प्ररूपणा किसको कहते हैं?

उ०—कथन करनेका नाम प्ररूपणा है। जैसे—जीवका कथन करनेको जीवप्ररूपणा कहते हैं।

१०२. प्र०—जीवप्ररूपणाके कितने प्रकार हैं?

उ०—संक्षेपसे तो दो ही प्रकार हैं—एक गुणस्थान और दूसरा मार्गणा। इन्हींके विस्तारसे जीवप्ररूपणाके बीस भेद हो जाते हैं—गुणस्थान, मार्गणा-स्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, उपयोग और १४ मार्गणाएँ।

---

९८. त्रि० सा०, गा० १४३।

१०३. प्र०—गुणस्थान किसको कहते हैं ?

उ०—दर्शन मोहनीय आदि कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमसे होनेवाले जीवके भावोंको गुण कहते हैं। उन गुणोंकी तारतम्यरूप अवस्था विशेषको गुणस्थान कहते हैं।

१०४. प्र०—गुणस्थानके कितने भेद हैं ?

उ०—गुणस्थानके चौदह भेद हैं—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवली और अयोगकेवली।

१०५. प्र०—गुणस्थानोंके ये नाम होनेका कारण क्या है ?

उ०—मोहनीय कर्म और योग। क्योंकि आदिके चार गुणस्थान तो दर्शन मोहनीय कर्मके निमित्तसे होते हैं, पाँचवेंसे लगाकर बारहवें गुणस्थान पर्यन्त आठ गुणस्थान चारित्रमोहनीयके निमित्तसे होते हैं और तेरहवाँ तथा चौदहवाँ गुणस्थान योगोंके निमित्तसे होता है।

१०६. प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—दर्शन मोहनीयके भेद मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे होनेवाले अतत्त्व श्रद्धानरूप जीवके भावको मिथ्यात्व गुणस्थान कहते हैं। यह गुणस्थान दर्शन-मोहनीयके उदयसे होता है, इसीसे इसमें औदयिक भाव कहा है। इस गुण-स्थानवाला मिथ्यादृष्टि जीव यथार्थ वस्तुका श्रद्धान नहीं करता और जैसे पित्त-ज्वर वाले रोगीको मीठा दूध अच्छा नहीं लगता वैसे ही उसे धर्म भी अच्छा नहीं लगता।

१०७. प्र०—सासादन गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—प्रथमोपशम अथवा द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके कालमें कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक छै आवलीकाल शेष रहनेपर, अनन्तानुबन्धी कषायके चार भेदोंमेंसे किसी एक कषायका उदय होनेसे जो जीव अपने सम्यक्त्वसे च्युत हो जाता है उसे सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं। अर्थात् सम्यक्त्वरूपी पर्वतकी चोटीसे गिरकर मिथ्यात्वरूपी भूमिकी ओर आनेवाला जीव सासादन सम्यग्दृष्टि है। इस गुणस्थानमें पारिणामिक भाव कहा है क्योंकि यह गुणस्थान दर्शन मोहनीय कर्मके उदय वगैरहकी अपेक्षासे नहीं होता किन्तु अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे होता है और अनन्तानुबन्धी कषाय चारित्र-मोहनीयका भेद है।

१०८. प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें क्या अन्तर है ?

उ०—मिथ्यादृष्टि जीवके अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन सात प्रकृतियोंके उपशम होनेसे चौथे आदि गुणस्थानोंमें जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं और सातवें गुणस्थानमें उपशमश्रेणी चढ़नेके सम्मुख अवस्थामें क्षायोपशमिक सम्यक्त्वसे जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

१०९. प्र०—मिश्रगुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—सम्यक्मिथ्यात्व मोहनीयके उदयसे न तो केवल मिथ्यात्वरूप परिणाम होते हैं और न केवल सम्यक्त्वरूप परिणाम होते हैं। किन्तु मिले हुए दही और गुड़की तरह एक जुदी ही जातिरूप सम्यक्मिथ्यात्व परिणाम होते हैं। इसीको मिश्रगुणस्थान कहते हैं।

११०. प्र०—मिश्रगुणस्थानकी विशेषता क्या है ?

उ०—मिश्रगुणस्थानसे पाँचवें आदि गुणस्थानोंमें चढ़ना शक्य नहीं है तथा मिश्र गुणस्थानमें अगले भवकी आयुका बन्ध नहीं होता और न मरण ही होता है।

१११. प्र०—चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—औपशमिक, क्षायोपशमिक अथवा क्षायिक सम्यक्त्वसे सहित होते हुए जो जीव चारित्र मोहनीयका उदय होनेसे व्रतोंसे रहित होता है उसे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान वाला कहते हैं। सारांश यह है कि वह न तो इन्द्रियोंके विषयोंका त्यागी होता है और न त्रस और स्थावर जीवोंकी हिंसाका त्यागी होता है, केवल जिनेन्द्र देवके द्वारा कहे हुए उपदेशपर अपनी आस्था रखता है। चौथे गुणस्थानसे लेकर आगेके सभी गुणस्थानोंमें नियमसे सम्यक्त्व होता है।

११२. प्र०—देशविरत अथवा विरताविरत नामक पाँचवें गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय होनेसे यद्यपि सकलसंयम नहीं होता किन्तु एकदेशसंयम होता है। इसहीको देशविरत कहते हैं। इस देश-विरत गुणस्थानवाला जीव त्रस हिंसासे तो विरत होता है और स्थावर जीवोंकी हिंसासे विरत नहीं होता। इसलिये इसे विरताविरत या संयतासंयत भी कहते हैं।

११३. प्र०—प्रमत्तविरत नामक छठें गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—चारित्रमोहनीयका क्षयोपशम होनेसे सकलसंयमके होते हुए भी जिस मुनिके प्रमादका सद्भाव होता है वह प्रमत्तविरत नामक छठे गुण-स्थानवर्ती होता है।

११४. प्र०—प्रमाद किसे कहते हैं ?

उ०—अच्छे कार्योंमें उत्साहके न होनेका नाम प्रमाद है।

११५. प्र०—प्रमादके कितने भेद हैं ?

उ०—पन्द्रह भेद हैं—चार विकथा (स्त्रीकथा, भोजनकथा, राष्ट्रकथा और राजकथा), चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), पाँच इन्द्रियाँ, एक निद्रा और एक स्नेह।

११६. प्र०—अप्रमत्तविरत नामक सातवें गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—संज्वलनकषाय और नोकषायोंका मन्द उदय होनेसे प्रमादरहित संयम भावको अप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं।

११७ प्र०—अप्रमत्त विरतके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—स्वस्थान अप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त।

११८. प्र०—स्वस्थान अप्रमत्त किसे कहते हैं ?

उ०—जो समस्त प्रमादोंको नष्ट करके व्रत, गुण और शीलसे भूषित है, धर्मध्यानमें लीन उस ज्ञानी मुनिको स्वस्थान अप्रमत्त कहते हैं।

११९. प्र०—सातिशय अप्रमत्त किसे कहते हैं ?

उ०—जो अप्रमत्तविरत उपशमश्रेणि अथवा क्षपकश्रेणि चढ़नेके अभि-मुख होता हुआ, चारित्रमोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंका उपशम अथवा क्षय करनेमें निमित्तभूत अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन प्रकारके परिणामोंमेंसे पहले अधःकरणको करता है उसे सातिशय अप्रमत्त कहते हैं।

१२०. प्र०—श्रेणि चढ़नेसे क्या अभिप्राय है ?

उ०—सातवें गुणस्थानसे आगे गुणस्थानोंकी श्रेणियाँ हैं—एकका नाम उपशमश्रेणि है और दूसरीका नाम क्षपकश्रेणि है। प्रत्येक श्रेणिमें चार-चार गुणस्थान होते हैं। जिनमें यह जीव क्रमसे ऊपर जाता है। इसीको श्रेणि चढ़ना कहते हैं।

१२१. प्र०—उपशमश्रेणि किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें चारित्र मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंका उपशम किया जाये उसे उपशमश्रेणि कहते हैं।

१२२. प्र०—उपशमश्रेणिके गुणस्थान कौन-कौन हैं ?

उ०—आठवाँ, नौवाँ, दसवाँ और ग्यारहवाँ ये चार गुणस्थान उपशम श्रेणिके हैं।

१२३. प्र०—क्षपकश्रेणि किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें चारित्र मोहनीयको २१ प्रकृतियोंका क्षय किया जाता है, उसे क्षपकश्रेणि कहते हैं।

१२४. प्र०—क्षपकश्रेणिके गुणस्थान कौनसे हैं ?

उ०—आठवां, नौवां, दसवां और बारहवां, ये चार गुणस्थान क्षपक श्रेणिके हैं।

१२५. प्र०—श्रेणि चढ़नेका पात्र कौन है ?

उ०—सातवें गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टी और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी ही श्रेणि चढ़ सकते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टी उपशम श्रेणि भी चढ़ सकता है और क्षपकश्रेणि भी चढ़ सकता है किन्तु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टो केवल उपशमश्रेणि ही चढ़ सकता है, क्षपकश्रेणि नहीं चढ़ सकता तथा प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टो और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टी श्रेणि नहीं चढ़ सकते।

१२६. प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्व अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्ववाला किस विधिसे श्रेणि चढ़नेका पात्र बन सकता है ?

उ०—प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला प्रथमोपशम सम्यक्त्वको छोड़कर क्षायोपशमिक सम्यक्त्वको ग्रहण करे। फिर अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणामोंके द्वारा पहले अनन्तानुबन्धीकषायका विसंयोजन करे और अन्तर्मुहूर्त काल तकका विश्राम लेकर पुनः अधःकरण आदि रूप परिणामोंके द्वारा या तो दर्शनमोहनीयको तीन प्रकृतियोंका उपशम करके द्वितोयोपशम सम्यग्दृष्टी हो जाये या उनका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टो हो जाये। तब श्रेणि चढ़नेका पात्र हो सकता है।

१२७. प्र०—विसंयोजन किसे कहते हैं ?

उ०—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभके कर्म परमाणुओंको बारह कषाय और नव नोकषायरूप परिणमानेको विसंयोजन कहते हैं।

१२८. प्र०—अधःकरण किसको कहते हैं ?

उ०—जिस करणमें ऊपरके समयमें वर्तमान जीवके परिणाम जैसो विशुद्धताको लिये हुए हों, वैसी ही विशुद्धताको लिये हुए परिणाम नीचेके समयमें वर्तमान जीवके भी होते हैं उसे अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। जैसे—दो जीवोंने

एक साथ अधःप्रवृत्तकरणको प्रारम्भ किया। द्वितीय आदि समय बीतनेपर उनमेंसे एक जीवके परिणाम जैसो विशुद्धताको लिये हुए होते हैं, दूसरे जीवके वैसी विशुद्धताको लिये हुए परिणाम प्रथम समयमें भी होते हैं। इस प्रकार इस करणमें ऊपर और नीचेके समय सम्बन्धी परिणामोंकी समानता और असमानता होनेसे इसे अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है।

१२९. प्र०—अपूर्वकरण किसको कहते हैं ?

उ०—जिसमें प्रति समय अपूर्व अपूर्व परिणाम हों उसे अपूर्वकरण गुणस्थान कहते हैं। सारांश यह है कि इस करणमें ऊपरके समयोंमें स्थित जीवोंके और नीचेके समयोंमें स्थित जीवोंके परिणाम कभी भी समान नहीं होते। किन्तु एक ही समयमें स्थित जोवोंके परिणाम समान भी होते हैं और समान नहीं भी होते। जैसे—जिन जीवोंको अपूर्वकरणमें आये पाँचवाँ समय है, उन जीवोंके जैसे परिणाम होते हैं वैसे परिणाम जिन जीवोंको अपूर्वकरणमें आये एक, दो, तीन या चार अथवा छै समय हुए हैं, उनके कभी भी नहीं होते। तथा पाँचवें समयमें वर्तमान जीवोंके परिणाम परस्परमें समान भी होते हैं और नहीं भो होते। इसका काल भो अन्तर्मुहूर्त है।

१३०. प्र०—अधःकरण और अपूर्वकरणमें क्या अन्तर है ?

उ०—अधःकरणमें भिन्न-भिन्न समयोंमें वर्तमान जीवोंके परिणामोंमें जैसे समानता होती है अपूर्वकरणमें वह नहीं होती तथा अधःकरणमें जैसे एक समयमें स्थित जीवोंके परिणामोंमें समानता और असमानता दोनों होतो है वैसे अपूर्वकरणमें भो होतो है।

१३१. प्र०—अनिवृत्तिकरण किसको कहते हैं ?

उ०—जिस करणमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम असमान ही होते हैं और एक समयवर्ती जीवोंके परिणाम समान ही होते हैं, उसको अनिवृत्तिकरण कहते हैं। जैसे—जिन जीवोंको अनिवृत्तिकरणमें आये हुए पाँचवाँ समय है उन त्रिकालवर्ती जीवोंके परिणाम परस्परमें समान हो होते हैं, हीन अधिक नहीं होते तथा वे परिणाम, जिन जोवोंको अनिवृत्तिकरणमें आये हुए चौथा समय हुआ है, उनके विशुद्ध परिणामोंसे अनन्तगुणे विशुद्ध होते हैं। इसी तरह जिन जीवोंको अनिवृत्तिकरणमें आये हुए छठा समय हुआ है, उनके परिणाम पाँचवें समयवर्ती जोवोंके विशुद्ध परिणामोंसे अनन्तगुणे विशुद्ध होते हैं। इसो तरह सर्वत्र जानना।

१३२. प्र०—सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—जिस गुणस्थानमें अत्यन्त सूक्ष्म अवस्थाको प्राप्त लोभ कषाय मात्रका उदय शेष रहता है उसको सूक्ष्मसाम्पराय नामका दसवाँ गुणस्थान कहते हैं।

१३३. प्र०—उपशान्तकषाय गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—जैसे गदले पानीमें फिटकरी डालनेसे पानी ऊपरसे निर्मल हो जाता है और गाद उसके नीचे बैठ जाती है वैसे ही जिस जीवका मोहनीय कर्म पूरी तरहसे उपशान्त हो जाता है, वह जीव उपशान्त कषाय नामक दसवें गुणस्थानवाला कहा जाता है। इस गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त है। काल पूरा हो जानेपर मोहनीयका उदय हो आता है, जिससे इस गुणस्थानवाला जीव गिरकर नीचेके गुणस्थानोंमें आ जाता है।

१३४. प्र०—क्षीणकषाय गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—मोहनीय कर्मकी समस्त प्रकृतियोंका क्षय हो जानेसे जिसका चित्त स्फटिकके पात्रमें रखे हुए जलके समान निर्मल होता है उसको क्षीणकषाय गुणस्थानवाला कहते हैं।

१३५. प्र०—उपशान्तकषाय और क्षीणकषायमें क्या अन्तर है ?

उ०—उपशान्तकषाय जीवके यद्यपि मोहका उदय नहीं है फिर भी मोहनीय कर्मकी सत्ता है किन्तु क्षीणकषाय जीवके मोहनीय कर्मका उदय भी नहीं है और अस्तित्व भी नहीं है। फिर भी दोनोंके ही परिणामोंमें कषायोंका अभाव है अतः दोनोंके यथाख्यात चारित्र होता है और दोनों ही बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहसे रहित होनेके कारण निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं।

१३६. प्र०—सयोगकेवली गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—जो केवल ज्ञानरूपी सूर्यके द्वारा लोगोंका अज्ञानरूपी अन्धकार दूर करते हैं और क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, इन नौ केवललब्धियों के प्रकट होने से जो परमात्मा कहे जाते हैं उनको सयोग-केवली गुणास्थानवर्ती कहते हैं। आशय यह है कि योगकी मुख्यता होने से उन्हे सयोग कहते हैं, केवलज्ञानी होनेसे केवली कहते हैं और घाति कर्मोंका निर्मूल नाश कर देने से वे जिन कहे जाते हैं। इस तरह उसका पूरा नाम सयोगकेवली जिन सार्थक है।

१३७. प्र०—अयोगकेवली गुणस्थान क्या स्वरूप है ?

उ०—समस्त कर्मोंका आस्रव रुक जानेसे जिनके नवीन कर्मबन्धका सर्वथा अभाव है तथा मनोयोग, वचनयोग और काययोगसे रहित होनेके कारण जो अयोग कहे जाते हैं उनको अयोगकेवली कहते हैं।

१३८. प्र०—किस गुणस्थानसे जीव किस गुणस्थानमें जा सकता है ?

उ०—मिथ्यादृष्टि तीसरे, चौथे, पाँचवें और सातवें गुणस्थानको प्राप्त कर सकता है। दूसरे सासादनगुणस्थानवाला जीव गिरकर मिथ्यात्वमें ही आता है, ऊपर नहीं चढ़ सकता। मिश्र गुणस्थानवाला पहले या चौथे गुणस्थानको प्राप्त होता है। अविरत सम्यदृष्टी और देशविरत, अप्रमत्त संयत गुणस्थान तक प्रमत्त संयतके सिवाय अन्य किसी भी गुणस्थानको प्राप्त हो सकते हैं। प्रमत्तसंयत गुणस्थानवाला अप्रमत्त संयत पर्यन्त हैगुणस्थानोंमें-से किसी भी गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है। अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवाला छठे गुणस्थानको या अपूर्वकरण गुणस्थानको प्राप्त होता है। उपशमश्रेणि-वाले जीव उपशमश्रेणीके गुणस्थानोंपर क्रमसे चढ़ते हैं और क्रमसे ही उतरते हैं। अर्थात् अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवाले एक अपने से नीचेके और एक अपनेसे ऊपरके, इस तरह दो ही गुणस्थानोंको प्राप्त कर सकते हैं और उपशान्त कषाय गुणस्थानवाला ऊपर नहीं चढ़ता, नीचे ही आता है अतः वह एक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानको ही प्राप्त होता है। क्षपकश्रेणिवाले जीव आठवें, नौवें, दसवें और बारहवें आदि गुणस्थान-में क्रमसे चढ़ते हैं।

१३९. प्र०—किस गुणस्थानमें मरण होता है ?

उ०—तीसरे गुणस्थानमें तथा क्षपकश्रेणिके चार गुणस्थानोंमें और तेरहवें गुणस्थानमें मरण नहीं होता। शेष गुणस्थानोमें होता है।

१४०. प्र०—किस गुणस्थानमें मरकर जीव किस गतिमें जाता है ?

उ०—पहले और चौथे गुणस्थानसे मरकर जीव चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें जा सकता है। सासादनसे मरकर नरक गतिमें नहीं जाता, शेष तीनोंमेंसे किसी भी गतिमें जा सकता है। चौदहवें गुणस्थानसे मुक्ति होती है और शेष सात गुणस्थानोंसे मरकर जीव नियमसे देवगतिमें जन्म लेता है।

१४१. प्र०—किन अवस्थाओंमें मरण नहीं होता ?

उ०—मिश्र काययोगवाले, प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाले और सातवें नरक में दूसरे आदि गुणस्थानोंमें वर्तमान जीवोंका मरण नहीं होता। अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके जो जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें आ जाता है एक अन्तर्मुहूर्त तक उसका मरण नहीं हो सकता। दर्शनमोहका क्षय करनेवाला जब तक कृत्यकृत्य नहीं हो जाता तब तक उसका मरण नहीं होता।

---

१३८. कर्मकाण्ड, गा० ५५७-५५९।

१४२. प्र०—जीवसमास किसे कहते हैं ?

उ०—जिनके द्वारा अथवा जिनमें सब संसारी जीवोंका संग्रह किया जाता है उन्हें जीवसमास कहते हैं।

१४३ प्र०—संक्षेपसे जीवसमासके कितने भेद हैं ?

उ०—चौदह भेद हैं—एकेन्द्रियके दो भेद—बादर और सूक्ष्म, विकलेन्द्रियके तीन भेद—दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रियके दो भेद—सैनी और असैनी। ये सातों पर्याप्तक और अपर्याप्तकके भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं।

१४४. प्र०—विस्तारसे जीवसमासके कितने भेद हैं ?

उ०—अट्ठानबे-एकेन्द्रियके बयालीस, विकलेन्द्रियके नौ, पञ्चेन्द्रियके सैंतालीस।

१४५. प्र०—एकेन्द्रियके बयालीस भेद कौनसे हैं ?

उ०—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारण वनस्पतिकायिकके दो भेद नित्यनिगोद और इतरनिगोद ये छहों बादर भी होते हैं और सूक्ष्म भी होते हैं, अतः बारह भेद हुए, तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक के दो भेद हैं—सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित। ये चौदहों पर्याप्तक, निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तकके भेदसे तीन-तीन प्रकारके होते हैं। इस तरह एकेन्द्रियके ४२ जीवसमास होते हैं।

१४६. प्र०—विकलेन्द्रियके नौ भेद कौनसे हैं ?

उ०—दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियके पर्याप्तक, निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तककी अपेक्षासे नौ जीवसमास होते हैं।

१४७. प्र०—पञ्चेन्द्रियके सैंतालीस भेद कौनसे हैं ?

उ०—तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियके ३४, मनुष्यके नौ, देवोंके दो और नारकियोंके दो।

१४८. प्र०—तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियके ३४ भेद कौनसे हैं ?

उ०—कर्मभूमियाके तीस और भोगभूमियाके चार।

१४९. प्र०—कर्मभूमिया तिर्यञ्चके तीस भेद कौनसे हैं ?

उ०—कर्मभूमियाके तीन भेद हैं—जलचर, नभचर और थलचर। ये तीन संज्ञी और असंज्ञीके भेदसे दो-दो प्रकारके होनेके कारण छै भेद हुए। ये छहों गर्भज भी होते हैं और नपुंसक भी होते हैं। गर्भजोंमें पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त ये दो भेद होते हैं और सम्मूर्छनोंमें पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्य-

पर्याप्त ये तीन भेद होते हैं। अतः कर्मभूमिया पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके ६ × २ = १२ + [(६ × ३) = १८] = ३०। कुल तीस भेद होते हैं।

१५०. प्र०—भोगभूमिया तिर्यञ्चके चार भेद कौनसे हैं ?

उ०—भोगभूमिमें जलचर तिर्यञ्च नहीं होते तथा सब गर्भज और संज्ञी ही होते हैं। अतः थलचर और नभचर और उनके पर्याप्तक और निर्वृत्त्य-पर्याप्तककी अपेक्षा चार भेद हुए।

१५१. प्र०—मनुष्योंके नौ भेद कौनसे हैं ?

उ०—आर्यखण्डके मनुष्य, म्लेच्छ खण्डके मनुष्य, भोगभूमिके मनुष्य और कुभोगभूमिके मनुष्य, इस प्रकार मनुष्यके चार भेद हैं। इनमेंसे आर्य-खण्डके मनुष्य पर्याप्तक, निर्वृत्त्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तकके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं और शेष तीन पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तकके भेदसे दो-दो ही प्रकारके होते हैं।

१५२. प्र०—नारकियोंके दो भेद कौनसे हैं ?

उ०—पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक।

१५३. प्र०—देवोंके दो भेद कौनसे हैं ?

उ०—पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक।

१५४. प्र०—पर्याप्तक किसे कहते हैं ?

उ०—जिस जीवकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो गई है उसको पर्याप्तक कहते हैं।

१५५. प्र०—निर्वृत्त्यपर्याप्तक किसे कहते हैं ?

उ०—जब तक जीवकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण न हुई हो, किन्तु नियमसे पूर्ण होनेवाली हो, तब तक उस जीवको निर्वृत्त्यपर्याप्तक कहते हैं।

१५६. प्र०—लब्ध्यपर्याप्तक किसे कहते हैं ?

उ०—जिस जीवकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो और श्वासके अट्ठारहवें भागमें ही मरण होनेवाला हो उसको लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं।

१५७. प्र०—पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, और मनोवर्गणाके परमाणुओंको शरीर आदि रूप परिणमानेकी शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति कहते हैं।

१५८. प्र०—पर्याप्तिके कितने भेद हैं ?

उ०—पर्याप्तिके छै भेद हैं—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रिय-पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति।

१५९. प्र०—आहारपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—आहारवर्गणाके परमाणुओंको खल और रसभाग रूप परिणमानेकी कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको आहारपर्याप्ति कहते हैं।

१६०. प्र०—शरीरपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—जिन परमाणुओंको खल रूप परिणमाया था उनको हाड़ वगैरह कठिन अवयवरूप और जिनको रसरूप परिणमाया था उनको रुधिर आदि रूप परिणमानेको कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको शरीरपर्याप्ति कहते हैं।

१६१. प्र०—इन्द्रियपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—आहारवर्गणाके परमाणुओंको इन्द्रियके आकाररूप परिणमानेमें तथा इन्द्रिय द्वारा विषय ग्रहण करनेमें कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं।

१६२. प्र०—श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—आहारवर्गणाके परमाणुओंको श्वासोच्छ्वास रूप परिणमानेमें कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

१६३. प्र०—भाषापर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—भाषावर्गणाके परमाणुओंको वचनरूप परिणमानेमें कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको भाषापर्याप्ति कहते हैं।

१६४. प्र०—मनःपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—मनोवर्गणा के परमाणुओंको द्रव्य मनरूप परिणमानेमें तथा उसके द्वारा गुण-दोषका विचार, बीती बातका स्मरण आदि कार्य करनेमें कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको मनःपर्याप्ति कहते हैं।

१६५. प्र०—पर्याप्तियोंके आरम्भ और पूर्णताका क्या क्रम है ?

उ०—अपने-अपने योग्य पर्याप्तियोंका आरम्भ तो एक साथ ही होता है किन्तु उनकी पूर्णता क्रमसे होती है। सब पर्याप्तियोंके पूर्ण होनेका काल अन्तर्मुहूर्त है और एक-एक पर्याप्तिके पूर्ण होनेका काल भी अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु पहलेसे दूसरेका, दूसरेसे तीसरेका इस तरह छठे तकका कालक्रमसे बड़ा-बड़ा अन्तर्मुहूर्त है।

१६६. प्र०—किस जीवके कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?

उ०—एकेन्द्रियके भाषा और मनके बिना शेष चार पर्याप्तियाँ होती हैं।

दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय जीवोंके मनके बिना शेष पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय के छहों पर्याप्तियाँ होती हैं।

१६७. प्र०—पर्याप्तकके कितने गुणस्थान हो सकते हैं ?

उ०—पर्याप्तकके सभी गुणस्थान हो सकते हैं।

१६८. प्र०—निर्वृत्यपर्याप्तकके कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—पहला, दूसरा, चौथा और छठा में चार गुणस्थान होते हैं।

१६९. प्र०—लब्ध्यपर्याप्तकके कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—लब्धपर्याप्तकके केवल पहला गुणस्थान होता है।

१७०. प्र०—लब्ध्यपर्याप्तक जीव एक अन्तर्मुहूर्तमें कितने जन्म धारण करता है ?

उ०—छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस।

१७१. प्र०—योनि किसे कहते हैं ?

उ०—जीवके उत्पत्ति स्थानको योनि कहते हैं।

१७२. प्र०—योनिके कितने भेद हैं ?

उ०—दो, आकार योनि और गुण योनि।

१७३. प्र०—आकाररूप योनिके कितने भेद हैं ?

उ०—स्त्रीके शरीरमें होनेवाली आकार रूप योनिके तीन भेद हैं—शंखावर्त योनि, कूर्मोन्नत योनि और वंशपत्र योनि।

१७४ प्र०—किस योनिमें कौन उत्पन्न होता है ?

उ०—शंखावर्तक योनिमें तो गर्भ नहीं रहता। कूर्मोन्नत योनिमें तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण आदि उत्पन्न होते हैं और वंशपत्र योनिमें जन-साधारण उत्पन्न होते हैं।

१७५. प्र०—गुण योनिके कितने भेद हैं ?

उ०—नौ सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, संवृत, विवृत, संवृतविवृत।

१७६. प्र०—सचित्त आदिका क्या स्वरूप है ?

उ०—चेतन सहित पुद्गल स्कन्धको सचित्त कहते हैं। उससे विपरीतको अचित्त कहते हैं। जो पुद्गल स्कन्ध सचित्त अचित्त दोनों रूप होते हैं उन्हें सचित्ताचित्त कहते हैं। शीत स्पर्शसे युक्त पुद्गल स्कन्धको शीत कहते हैं। उष्ण स्पर्शसे युक्त पुद्गल स्कन्धको उष्ण कहते हैं। जो पुद्गल उभय रूप हों उन्हें शीतोष्ण कहते हैं। जिस पुद्गल स्कन्धका आकार गुप्त होता है, जिससे

उसे देखा नहीं जा सकता, उसे संवृत कहते हैं। जिसको देखा जा सकता है उसे विवृत कहते हैं और जो दोनों रूप हों उसे संवृतविवृत कहते हैं।

१७७. प्र०—**किस जन्मवालोंको कौन योनि होती है ?**

उ०—उपपाद जन्मवालोंकी अचित्त, शीत या उष्ण और संवृत योनि होती है। गर्भ जन्मवालोंको सचित्ताचित्त, शीत-उष्ण या शीतोष्ण और संवृत योनि होती है। सम्मूर्छन जन्मवालोंकी सचित्त, अचित्त या सचित्ताचित्त, शीत उष्ण या शीतोष्ण और संवृत अथवा विवृत योनि होती है। इतना विशेष है कि तेजस्कायिक जीवोंकी योनि उष्ण ही होती है तथा एकेन्द्रियोंकी योनि संवृत और विकलेन्द्रियोंकी विवृत होती है।

१७८. प्र०—**योनि और जन्ममें क्या भेद है ?**

उ०—योनि आधार है, जन्म आधेय है; क्योंकि सचित्त आदि योनियोंमें जीव सम्मूर्छन आदि जन्म लेकर उत्पन्न होता है।

१७९. प्र०—**विस्तारसे योनिके भेद कितने हैं ?**

उ०—विस्तारसे योनिके भेद चौरासी लाख हैं—नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक इन छहोंमेंसे प्रत्येकको सात-सात लाख योनियाँ हैं। प्रत्येक वनस्पतिकी दस लाख योनियाँ हैं। दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियमेंसे प्रत्येककी दो दो लाख योनियाँ हैं। देव नारकी और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमेंसे प्रत्येकको चार-चार लाख योनियां हैं और मनुष्योंकी चौदह लाख योनियाँ हैं।

१८०. प्र०—**जन्मके कितने भेद हैं ?**

उ०—तीन—सम्मूर्छन जन्म, गर्भ जन्म और उपपाद जन्म।

१८१. प्र०—**सम्मूर्छन जन्म किसे कहते हैं ?**

उ०—तीनों लोकोंमें सर्वत्र माता पिताके सम्बन्धके बिना सब ओरसे पुद्‌गलोंको ग्रहण करके जो शरीरकी रचना हो जाती है उसे सम्मूर्छन जन्म कहते हैं।

१८२. प्र०—**गर्भजन्म किसे कहते हैं ?**

उ०—स्त्रीके उदरमें माता पिताके रज वीर्यके मिलनेसे जो शरीरकी रचना होती है, उसे गर्भ जन्म कहते हैं।

१८३. प्र०—**उपपाद जन्म किसे कहते हैं ?**

उ०—जहाँ पहुँचते ही एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण शरीर बन जाता है ऐसे देव नारकियोंके जन्मको उपपाद जन्म कहते हैं।

१८४. प्र०—**किन जीवोंके कौन सा जन्म होता है ?**

उ०—देवनारकियोंके उपपाद जन्म ही होता है। जरायुज जन्मके समय (प्राणीके शरीरके ऊपर जालकी तरह जो रुधिर मांसकी खोल लिपटी रहती है उसे जरायु कहते हैं और उससे उत्पन्न होनेवालोंको जरायुज कहते हैं) अण्डज (अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले) और पोत (जन्मके समय जिनके शरीर-पर कोई आवरण नहीं होता तथा जो योनिसे निकलते ही चलने फिरने लगते हैं) इन तीन प्रकारके प्राणियोंके गर्भ जन्म ही होता है तथा शेष-जीवोंके सम्मूर्छन जन्म होता है।

१८५. प्र०—लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके कौन सा जन्म होता है ?

उ०—लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके सम्मूर्छन जन्म होता है।

१८६. प्र०—कौनसे जीवोंके कौन लिंग होता है ?

उ०—नारकी और सम्मूर्छन जीवोंके नपुंसक लिंग ही होता है। देवोंके पुल्लिग और स्त्रीलिंग ही होता है, शेष जीवोंके तीनोंमेंसे कोई भी लिंग होता है।

१८७. प्र०—प्राण किसे कहते हैं ?

उ०—जिनके संयोगसे यह जीव जीवन अवस्थाको और वियोगसे मरण अवस्थाको प्राप्त होता है उन्हें प्राण कहते हैं।

१८८. प्र०—प्राणके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—द्रव्यप्राण और भावप्राण।

१८९. प्र०—द्रव्यप्राण किसको कहते हैं ?

उ०—पुद्गलद्रव्यसे उत्पन्न हुए द्रव्य इन्द्रिय वगैरह की प्रवृत्तिको द्रव्य-प्राण कहते हैं।

१९०. प्र०—भावप्राण किसे कहते हैं ?

उ०—आत्माकी जिस शक्तिके निमित्तसे इन्द्रिय वगैरह अपने कार्यमें प्रवृत्त हों, उसे भावप्राण कहते हैं।

१९१. प्र०—द्रव्यप्राणके कितने भेद हैं ?

उ०—दस हैं—मन, वचन, काय, स्पर्शन इन्द्रिय, रसन इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय, श्रोत्र इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और आयु।

१९२. प्र०—किस जीवके कितने प्राण होते हैं ?

उ०—सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके दशों प्राण होते हैं। असैनी पञ्चे-न्द्रियपर्याप्तके मनके बिना नौ प्राण होते हैं। चौइन्द्रियके मन और श्रोत्र इन्द्रियके बिना आठ प्राण होते हैं। तेइन्द्रियके मन, श्रोत्र और चक्षुइन्द्रियके बिना सात प्राण होते हैं। दोइन्द्रियके मन, श्रोत्र, चक्षु और घ्राण इन्द्रियके

बिना छै प्राण होते हैं। एकेन्द्रियके स्पर्शनइन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये चार प्राण होते हैं। यह पर्याप्त अवस्थाकी अपेक्षा जानना। अपर्याप्त दशामें सैनी और असैनी पञ्चेन्द्रियके सात प्राण ही होते हैं, क्योंकि श्वासोच्छ्वास, वचनबल और मनोबल ये तीन प्राण पर्याप्त दशामें ही होते हैं। चौइन्द्रियके श्रोत्रके बिना छै, तेइन्द्रियके चक्षुके बिना पांच, दोइन्द्रियके घ्राणके बिना चार और एकेन्द्रिय अपर्याप्तके रसनाके बिना तीन ही प्राण होते हैं।

१९३. प्र०—पर्याप्ति और प्राणमें क्या भेद है?

उ०—पर्याप्ति करण है, प्राण कार्य है।

१९४. प्र०—संज्ञा किसे कहते हैं?

उ० - वांछा (चाह) को संज्ञा कहते हैं।

१९५. प्र०—संज्ञाके कितने भेद हैं?

उ०—चार हैं—आहार, भय, मैथुन और परिग्रह।

१९६. प्र०—उपयोग किसे कहते हैं?

उ०—जीवके लक्षणरूप परिणामको, जो चैतन्यके होनेपर ही होता है, उपयोग कहते हैं।

१९७. प्र०—उपयोगके कितने भेद हैं?

उ०—दो हैं—साकार उपयोग और अनाकार उपयोग।

१९८. प्र०—साकार उपयोगके कितने भेद हैं?

उ०—आठ हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधि अथवा विभंगज्ञान।

१९९. प्र०—अनाकार उपयोगके कितने भेद हैं?

उ०—चार हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

●

६

२०० प्र०—मार्गणा किसको कहते हैं?

उ०—जिनमें अथवा जिनके द्वारा जीवोंको खोजा जाता है उनका नाम मार्गणा है।

---

१६१. गो० जी०, गा० १३०।

१६६. गो० जी०; गा० १४१।

२०१. प्र०—मार्गणाके कितने भेद हैं ?

उ०—चौदह हैं—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व और आहार।

२०२. प्र०—गति किसको कहते हैं ?

उ०—गतिनामा नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई जीवकी पर्याय विशेषको गति कहते हैं।

२०३. प्र०—गतिके कितने भेद हैं ?

उ०—चार हैं—नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति।

२०४. प्र०—किस गतिमें कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—देवगति और नरकगतिमें आदिके चार गुणस्थान होते हैं, तिर्यञ्चगतिमें आदिके पाँच गुणस्थान होते हैं और मनुष्यगतिमें चौदह गुणस्थान होते हैं।

२०५. प्र०—इन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ०—आत्माके चिह्न विशेषको इन्द्रिय कहते हैं।

२०६. प्र०—इन्द्रियके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

२०७. प्र०—द्रव्येन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ०—निर्वृत्ति और उपकरणको द्रव्येन्द्रिय कहते हैं।

२०८. प्र०—निर्वृत्ति किसको कहते हैं ?

उ०—कर्मके द्वारा होनेवाली रचना विशेषको निर्वृत्ति कहते हैं।

२०९. प्र०—निर्वृत्तिके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—आभ्यन्तर निर्वृत्ति और बाह्य निर्वृत्ति।

२१०. प्र०—आभ्यन्तर निर्वृत्ति किसे कहते हैं ?

उ०—आत्माके विशुद्ध प्रदेशोंकी इन्द्रियोंके आकार रचना होनेको आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं।

२११. प्र०—बाह्य निर्वृत्ति किसको कहते हैं ?

उ०—पुद्गलोंकी इन्द्रियके आकार रचना होनेको बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं।

२१२. प्र०—उपकरण किसको कहते हैं ?

उ०—निर्वृत्तिका उपकार करनेवाले पुद्गलोंको उपकरण कहते हैं।

२१३. प्र०—उपकरणके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—आभ्यन्तर और बाह्य।

२१४. प्र०—आभ्यन्तर उपकरण किसको कहते हैं ?

उ०—चक्षु इन्द्रियमें काले सफेद मण्डलकी तरह सब इन्द्रियोंमें जो निर्वृत्तिका उपकार करता है, उसको आभ्यन्तर उपकरण कहते हैं।

२१५. प्र०—बाह्य उपकरण किसको कहते हैं ?

उ०—चक्षुमें पलकोंकी तरह सब इन्द्रियोंमें जो निर्वृत्तिका उपकार करता है, उसको बाह्य उपकरण कहते हैं।

२१६. प्र०—भावेन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ०—लब्धि और उपयोगको भावेन्द्रिय कहते हैं।

२१७. प्र०—लब्धि किसको कहते हैं ?

उ०—ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम विशेषको लब्धि कहते हैं।

२१८. प्र०—उपयोग किसको कहते हैं ?

उ०—लब्धिके निमित्तसे आत्माका जो परिणमन होता है, उसको उपयोग कहते हैं।

२१९. प्र०—द्रव्येन्द्रियके कितने भेद हैं ?

उ०—पाँच हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।

२२०. प्र०—स्पर्शन इन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके द्वारा स्पर्शका ज्ञान हो उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं।

२२१. प्र०—रसना इन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके द्वारा रसका ज्ञान हो उसे रसना इन्द्रिय कहते हैं।

२२२. प्र०—घ्राण इन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके द्वारा गंधका ज्ञान हो उसे घ्राण इन्द्रिय कहते हैं।

२२३. प्र०—चक्षु इन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके द्वारा रूपका ज्ञान हो उसे चक्षु इन्द्रिय कहते हैं।

२२४. प्र०—श्रोत्र इन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके द्वारा शब्दका ज्ञान हो उसे श्रोत्र इन्द्रिय कहते हैं।

२२५. प्र०—किस इन्द्रियका कैसा आकार होता है ?

उ०—श्रोत्र इन्द्रियका आकार जौ की नालीके समान है। चक्षुका मसूरके समान, रसनाका आधे चन्द्रमा या खुर्पेके समान, घ्राणका कदम्बके फूलके समान आकार है और स्पर्शन इन्द्रिय अनेक आकारवाली है।

२२६. प्र०—किन जीवोंके कितनी इन्द्रियाँ होती हैं ?

उ०—पृथिवीकायिक, जलकायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक। इन एकेन्द्रिय जीवोंके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। लट आदि

दोइन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती हैं। चींटी आदि तेइन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं। भौंरा आदि चौइन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियाँ होती हैं। साँप, घोड़ा, मनुष्य आदि पञ्चेन्द्रिय जीवोंके पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं।

२२७. प्र०—**एकेन्द्रिय आदिके कितने गुणस्थान होते हैं ?**

उ०—एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है। संज्ञी पञ्चेन्द्रियके चौदह गुण-स्थान होते हैं।

२२८. प्र०—**काय किसको कहते हैं ?**

उ०—त्रस स्थावर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई जीवकी त्रस स्थावर पर्यायको काय कहते हैं।

२२९. प्र०—**त्रस किसको कहते हैं ?**

उ०—त्रस नामकर्मके उदयसे दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चे-न्द्रियोंमें जन्म लेनेवाले जीवोंको त्रस कहते हैं।

२३०. प्र०—**स्थावर किसको कहते हैं ?**

उ०—स्थावर नामकर्मके उदयसे पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वन-स्पतिमें जन्म लेनेवाले जीवोंको स्थावर कहते हैं। इसीसे स्थावर कायके पाँच भेद हैं—पृथिवीकायिक, जलकायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक।

२३१ प्र०—**पृथिवीकायिक किसे कहते हैं ?**

उ०—पृथिवीरूप शरीरको पृथिवीकाय कहते हैं। वह जिनके पाया जाये उन जीवोंको पृथिवीकायिक कहते हैं अथवा जिन जीवोंके पृथिवीकाय नामकर्मका उदय है उन्हें पृथिवीकायिक कहते हैं। इसी तरह जलकायिक आदि भी जानना।

२३२. प्र०—**बादर किसको कहते हैं ?**

उ०—जो अन्य पदार्थसे रुक जाय वा दूसरे पदार्थोंको रोके, ऐसे स्थूल शरीरके धारी जीवोंको बादर कहते हैं।

२३३. प्र०—**सूक्ष्म किसको कहते हैं ?**

उ०—जो न किसीसे रुके और न दूसरोंको रोके, ऐसे सूक्ष्म शरीरके धारी जीवोंको सूक्ष्म कहते हैं।

२३४. प्र०—**वनस्पतिके कितने भेद हैं ?**

उ०—दो हैं—प्रत्येक और साधारण।

२३५. प्र०—प्रत्येक वनस्पति किसको कहते हैं ?

उ०—जिसमें एक जीवका एक शरीर होता है उसे प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

२३६. प्र०—साधारण वनस्पति किसको कहते हैं ?

उ०—जिसमें बहुतसे जीवोंका एक ही शरीर समान रूपसे होता है उसे साधारण वनस्पति कहते हैं।

२३७. प्र०—प्रत्येक वनस्पतिके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित।

२३८. प्र०—सप्रतिष्ठित प्रत्येक किसको कहते हैं ?

उ०—जिस प्रत्येक वनस्पतिके आश्रय अनेक साधारण वनस्पति हों उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

२३९. प्र०—अप्रतिष्ठित प्रत्येक किसको कहते हैं ?

उ०—जिस प्रत्येक वनस्पतिके आश्रय कोई भी साधारण वनस्पति न हो, उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

२४०. प्र०—सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठितकी क्या पहचान है ?

उ०—जिस प्रत्येक वनस्पतिमें सिरा जैसे ककड़ीकी लकीर, संधि जैसे नारंगीकी फाँकें, पर्व जैसे गन्नेकी गाँठ, गूढ हों तथा जिसको तोड़नेपर खटसे समान दो टुकड़े हो जायें वह सप्रतिष्ठित प्रत्येक है, और जिसकी सिरायें वगैरह स्पष्ट हो गई हों और जो तोड़नेपर बराबर न टूटे वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक है। इसी प्रकार जिस वनस्पतिकी छाल मोटी हो वह सप्रतिष्ठित है और जिसकी छाल पतली हो वह अप्रतिष्ठित है।

२४१. प्र०—साधारण वनस्पति सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिके ही रहती है या अन्यत्र भी रहती है ?

उ०—पृथिवी, जल, तेज और वायुकायके शरीर, केवलीका शरीर, आहारक शरीर, देवोंका शरीर और नारकियोंका शरीर इन शरीरोंमें साधारण वनस्पतिका निवास नहीं है। शेष सब जीवोंके शरीरोंमें साधारण वनस्पतिका निवास रहता है।

२४२. प्र०—साधारण वनस्पतिके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—नित्य निगोद और इतर निगोद।

२४३. प्र०—नित्य निगोद किसको कहते हैं ?

उ०—जो अनादिकालसे निगोद पर्यायको ही धारण किये हुए हैं और जिन्होंने कभी भी त्रस पर्याय प्राप्त नहीं की उन जीवोंको नित्यनिगोद कहते हैं।

२४४. प्र०—इतर निगोद किसको कहते हैं ?

उ०—जो बीचमें अन्य पर्याय धारण करके निगोदमें जाते हैं उन्हें इतर निगोद कहते हैं।

२४५. प्र०—बादर और सूक्ष्म जीव कौन-कौनसे हैं ?

उ०—पृथिवीकायिक, जलकायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक, नित्य-निगोद और इतरनिगोद ये छै बादर भी होते हैं और सूक्ष्म भी होते हैं। बाकीके सब जीव बादर ही होते हैं, सूक्ष्म नहीं होते।

२४६. प्र०—स्थावर और त्रसोंके कितने गुणस्थान हैं ?

उ०—स्थावर जीवोंके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है, त्रस जीवोंके चौदहों गुणस्थान हो सकते हैं।

२४७. प्र०—योग किसको कहते हैं ?

उ०—पुद्गलविपाकी शरीर और अंगोपांग नामकर्मके उदयसे मनोवर्गणा, वचनवर्गणा और कायवर्गगणाके अवलम्बनसे युक्त आत्माको जो शक्ति पुद्गल स्कन्धोंको कर्म और नोकर्मरूप परिणमाने में समर्थ है, उसे भावयोग कहते हैं और उस शक्तिके धारी आत्माके प्रदेशोंमें जो हलन-चलन होती है वह द्रव्ययोग है।

२४८. प्र०—योगों के कितने भेद हैं ?

उ०—पन्द्रह हैं—चार मनोयोग (सत्य-मनोयोग, असत्य-मनोयोग, उभय-मनोयोग, अनुभय-मनोयोग), चार वचनयोग (सत्य-वचनयोग, असत्य-वचनयोग, उभय-वचनयोग, अनुभय-वचनयोग) और सात काययोग औदारिक काययोग, औदारिक मिश्रकाययोग, वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिक मिश्रकाययोग, आहारक काययोग, आहारक मिश्रकाययोग और कार्मणकाय-योग।

२४९. प्र०—सत्य मनोयोग वगैरहका क्या स्वरूप है ?

उ०—घटको घट जानना या कहना सत्य है, घटको पट जानना या कहना असत्य है, कमंडलुको घट कहना या जानना उभय है क्योंकि कमंडलु भी घटकी तरह पानी भरनेके काम आता है, इसीलिये सत्य है और कमण्डलु का आकार घट जैसा नहीं है इसीलिये असत्य है, और सत्य असत्यके निर्णयसे रहित पदार्थ अनुभय हैं। सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रूप पदार्थोंमें जो मन और वचनकी प्रवृत्ति होती है अर्थात् चार प्रकारके पदार्थोंको जानने या कहनेके लिये जीव जो प्रयत्न करता है सो सत्य आदि पदार्थोंके सम्बन्धसे चार प्रकारका मनोयोग और चार प्रकारका वचनयोग होता है।

२५०. प्र०—मनोयोग किन गुणस्थानोंमें होता है।

उ०—असत्य मनोयोग और उभय मनोयोग बारहवें गुणस्थान तक होते हैं और सत्य मनोयोग तथा अनुभय मनोयोग सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थान तक होते हैं।

२५१. प्र०—केवलीके मनोयोग कैसे सम्भव है ?

उ०—इन्द्रियज्ञानसे रहित होनेके कारण सयोगकेवलीके मुख्य रूपसे तो मनोयोग नहीं है किन्तु अंगोपांग नामकर्मका उदय होनेसे हृदयमें स्थित द्रव्यमनके लिये मनोवर्गणाके स्कन्ध बराबर आते रहते हैं। अतः मनोयोग उपचार मात्रसे है।

२५२. प्र०—वचनयोग किन गुणस्थानोंमें होता है ?

उ०—असत्य वचनयोग और उभय वचनयोग बारहवें गुणस्थान तक होते हैं और सत्य वचनयोग तथा अनुभय वचनयोग तेरहवें गुणस्थान तक होते हैं।

२५३. प्र०—औदारिक काययोग किसे कहते हैं ?

उ०—मनुष्य और तिर्यञ्चोंके स्थूल शरीरको औदारिक कहते हैं और उसके निमित्तसे होनेवाले योगको औदारिक काययोग कहते हैं।

२५४. प्र०—औदारिक मिश्रकाययोग किसको कहते हैं ?

उ०—औदारिक शरीर जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक मिश्र कहलाता है। उसके द्वारा होनेवाले योगको औदारिक मिश्रकाययोग कहते हैं।

२५५. प्र०—वैक्रियिक काययोग किसको कहते हैं ?

उ०—अनेक गुण और ऋद्धियोंसे युक्त शरीरको वैक्रियिक शरीर कहते हैं और उसके द्वारा होनेवाले योगको वैक्रियिक योग कहते हैं।

२५६. प्र०—वैक्रियिक मिश्रकाययोग किसको कहते हैं ?

उ०—वैक्रियिक शरीर जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक मिश्र कहलाता है और उसके द्वारा जो योग होता है उसे वैक्रियिक मिश्रकाययोग कहत हैं।

२५७. प्र०—आहारक काययोग किसको कहते हैं ?

उ०—छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि अपनेको सन्देह होनेपर जिस शरीरके द्वारा केवलीके पास जाकर सूक्ष्म अर्थोंको ग्रहण करता है उसे आहारक शरीर कहते हैं और उसके द्वारा होनेवाले योगको आहारक काययोग कहते हैं।

२५८. प्र०—आहारक मिश्र काययोग किसको कहत हैं ?

उ०—जब तक आहारक शरीर पूर्ण नहीं होता, अर्थात् आहार वर्गणारूप पुद्गल स्कन्धोंको आहारक शरीर रूप परिणमानेमें समर्थ नहीं होता, तब तक

उसको आहारक मिश्र कहते हैं और उसके द्वारा जो योग होता है उसे आहारक मिश्र काययोग कहते हैं।

२५९. प्र०—कार्मण काययोग किसको कहते हैं ?

उ०—ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारके कर्मस्कन्धको ही कार्मण शरीर कहते हैं और उसके द्वारा होनेवाले योगको कार्मण काययोग कहते हैं।

२६०. प्र०—औदारिक और औदारिक मिश्र काययोग किसके होते हैं ?

उ०—तिर्यञ्च और मनुष्योंके होते हैं।

२६१. प्र०—वैक्रियिक और वैक्रियिक मिश्र काययोग किसके होते हैं ?

उ०—देवों और नारकियोंके होते हैं।

२६२. प्र०—तिर्यञ्च और मनुष्योंके भी वैक्रियिक शरीर सुना जाता है सो कैसे ?

उ०—औदारिक शरीर दो प्रकारका होता है—विक्रियात्मक और अविक्रियात्मक। उनमेंसे जो विक्रियात्मक औदारिक शरीर है वही मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके वैक्रियिक रूपसे कहा जाता है। उसका यहाँ पर ग्रहण नहीं है।

२६३. प्र०—आहारक और आहारक मिश्र काययोग किसके होते हैं ?

उ०—ऋद्धिधारी छठे गुणस्थानवर्ती मुनियोंके होते हैं।

२६४. प्र०—कार्मण काययोग किसके होता है ?

उ०—विग्रह गतिमें स्थित चारों गतियोंके जीवोंके तथा प्रतर और लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त केवलीके कार्मण काययोग होता है।

२६५. प्र०—विग्रह गति किसे कहते हैं ?

उ०—विग्रह शरीरको कहते हैं। नया शरीर धारण करनेके लिये जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते हैं। अथवा 'विग्रह' अर्थात् नोकर्म पुद्गलों का ग्रहण करनेके निरोधके साथ जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते हैं। अथवा 'विग्रह' अर्थात् मोड़को लिए हुए जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते हैं।

२६६. प्र०—विग्रह गतिके कितने भेद हैं ?

उ०—चार हैं—इषुगति या ऋजुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति और गोमूत्रिका गति।

२६७. प्र०—इषुगति किसको कहते हैं ?

उ०—धनुषसे छूटे हुए बाणके समान मोड़ा रहित गतिको इषुगति कहते हैं। इस गतिमें एक समय लगता है।

२६८. प्र०—पाणिमुक्ता गति किसको कहते हैं ?

उ०—जैसे हाथसे तिरछे फेंके गये द्रव्यकी एक मोड़ेवाली गति होती है उसी प्रकार संसारी जीवोंकी एक मोड़ेवाली गतिको पाणिमुक्ता गति कहते हैं। यह गति दो समय वाली होती है।

२६९. प्र०—लांगलिका गति किसको कहते हैं ?

उ०—जैसे हलमें दो मोड़े होते हैं वैसे ही दो मोड़ेवाली गतिको लांगलिका गति कहते हैं। यह गति तीन समयवाली होती है।

२७०. प्र०—गोमूत्रिका गति किसको कहते हैं ?

उ०—जैसे गायका चलते हुए मूत्र करना अनेक मोड़ोंवाला होता है उसी प्रकार तीन मोड़ेवाली गतिको गोमूत्रिका कहते हैं। यह गति चार समयवाली होती है।

२७१. प्र०—चार मोड़ेवाली गति क्यों नहीं होती ?

उ०—लोकके मध्यसे लेकर ऊपर, नीचे और तिरछे क्रमसे विद्यमान आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तिको श्रेणि कहते हैं। इस श्रेणिके अनुसार ही जीवोंका गमन होता है। श्रेणिका उल्लंघन करके गमन नहीं होता। इसलिए ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँपर पहुँचनेके लिए चार मोड़ लेने पड़ें।

२७२. प्र०—समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—मूल शरीरको बिना छोड़े जीवके प्रदेशोंके बाहर निकलनेको समुद्-घात कहते हैं।

२७३. प्र०—समुद्घातके कितने भेद हैं ?

उ०—सात भेद हैं—वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, विक्रिया समुद्-घात, मारणान्तिक समुद्घात, तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात और केवली समुद्घात।

२७४. प्र०—वेदना समुद्घात वगैरहका क्या स्वरूप है ?

उ०—बहुत पीड़ाके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेको वेदना समुद्घात कहते हैं। क्रोध आदि कषायके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेको कषाय समुद्घात कहते हैं। विक्रियाके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेको विक्रिया समुद्घात कहते हैं। मरण होनेसे पहले नवीन पर्याय धारण करनेके क्षेत्र पर्यन्त प्रदेशोंके बाहर निकलनेको मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं। अशुभ या शुभ तैजसके साथ आत्मप्रदेशोंके बाहर निक-लनेको तैजस समुद्घात कहते हैं। प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनिके आहारक

शरीरके साथ आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेको आहारक समुद्घात कहते हैं और केवलज्ञानीके समुद्घातको केवली समुद्घात कहते हैं।

२७५. प्र०—केवली समुद्घात क्यों करते हैं ?

उ०—आयु कर्मकी स्थितिसे अन्य तीन कर्मोंकी स्थिति अधिक होनेपर उनकी स्थिति भी आयु कर्मके समान करनेके लिए केवली समुद्घात करते हैं।

२७६. प्र०—सभी केवली समुद्घात करते हैं क्या ?

उ०—यतिवृषभ आचार्यके मतसे सभी केवली समुद्घात करके ही मुक्त होते हैं। अन्य आचार्यके मतसे कुछ केवली समुद्घात करते हैं और कुछ नहीं करते।

२७७. प्र०—केवली समुद्घातमें कितना समय लगता है ?

उ०—केवली समुद्घातमें आठ समय लगते हैं—पहले समयमें आत्मप्रदेशोंको फैलाकर दण्डके आकार करते हैं। दूसरे समयमें कपाटके आकार करते हैं, तीसरे समयमें प्रतररूप करते हैं और चौथे समयमें आत्मप्रदेशोंसे लोकको पूर देते हैं। पाँचवें समयसे लोकपूरणसे प्रतररूप, छठेंमें प्रतरसे कपाटरूप, सातवेंमें कपाटसे दण्डरूप और आठवेंमें फिरसे शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं।

२७८. प्र०—एक कालमें योग कितने होते हैं ?

उ०—एक कालमें एक जीवके एक ही योग होता है।

२७९. प्र०—वेद किसको कहते हैं ?

उ०—चारित्र मोहनीयके भेद पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदरूप नोकषायके उदयसे उत्पन्न हुई मैथुनकी अभिलाषाको भाववेद कहते हैं और नामकर्मके उदयसे शरीरमें प्रकट होनेवाले चिह्न विशेषको द्रव्यवेद कहते हैं।

२८०. प्र०—वेदके कितने भेद हैं ?

उ०—तीन हैं—पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद।

२८१. प्र०—भाववेद और द्रव्यवेद समान ही होते हैं या असमान भी ?

उ०—देव, नारकी, भोगभूमि या तिर्यञ्च और मनुष्योंमें जैसा द्रव्यवेद होता है वैसा ही भाववेद भी होता है। किन्तु कर्मभूमिया मनुष्य और तिर्यञ्चोंमें किन्हींके तो जैसा द्रव्यवेद होता है वैसा ही भाववेद होता है और किन्हींके द्रव्यवेद दूसरा होता है और भाववेद दूसरा होता है।

२८२. प्र०—भाववेद किस गुणस्थान तक होता है ?

उ०—नौवें गुणस्थानके सवेद भाग पर्यन्त होता है। इसके आगे जीव वेदरहित होते हैं।

२८३. प्र०—किन जीवोंमें कौनसा वेद होता है ?

उ०—नारकी नपुंसकवेदी ही होते हैं। देवोंमें स्त्री और पुरुष दो ही वेद होते हैं। मनुष्य और तिर्यञ्चोंमें तीनों वेद पाये जाते हैं।

२८४. प्र०—कषाय किसको कहते हैं ?

उ०—जो जीवके कर्मरूपी खेत का कर्षण करती है उसे कषाय कहते हैं।

२८५. प्र०—कषायके कितने भेद हैं ?

उ०—चार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ।

२८६. प्र०—कषाय कितने गुणस्थान तक रहती है ?

उ०—क्रोध, मान और माया नौवें गुणस्थान तक होते हैं और लोभ-कषाय दसवें गुणस्थान तक रहती है। उसके बादके गुणस्थानवाले जीव अक-षाय होते हैं।

२८७. प्र०—ज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके द्वारा जीव त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य, उनके गुण और उनकी पर्यायोंको प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे जानते हैं उसे ज्ञान कहते हैं।

२८८. प्र०—ज्ञानमार्गणाके कितने भेद हैं ?

उ०—आठ हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवल-ज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुवधिज्ञान।

२८९. प्र०—मतिज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—पाँच इन्द्रियों और मनकी सहायतासे जो पदार्थका ग्रहण होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं।

२९०. प्र०—मतिज्ञानके कितने भेद हैं ?

उ०—चार हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

२९१. प्र०—अवग्रह किसको कहते हैं ?

उ०—इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध होनेके अनन्तर समयमें जो आद्य ग्रहण होता है उसे अवग्रह कहते हैं। जैसे—चक्षुसे सफेद रूपका जानना अवग्रह है।

२९२. प्र०—ईहा किसको कहते हैं ?

उ०—अवग्रहसे जाने हुए पदार्थके विशेषको जाननेके लिए अभिलाषा रूप जो ज्ञान होता है उसे ईहा कहते हैं। जैसे—यह सफेद रूपवाली वस्तु क्या है ? यह तो बगुलों की पंक्ति मालूम होती है।

२९३. प्र०—अवाय किसको कहते हैं ?

उ०—ईहाके द्वारा जाने गये पदार्थके निश्चयात्मक ज्ञानको अवाय कहते हैं। जैसे—यह बगुलोंकी पंक्ति ही है।

२९४. प्र०—धारणा किसको कहते हैं ?

उ०—कालान्तरमें भी विस्मरण न होने रूप संस्कारके जनक ज्ञानको धारणा कहते हैं।

२९५. प्र०—मतिज्ञानके विस्तारसे कितने भेद हैं ?

उ०—तीन सौ छत्तीस—मतिज्ञानके विषयभूत पदार्थ दो प्रकारके हैं—एक व्यंजनरूप या अव्यक्त और एक अर्थरूप या व्यक्त। पदार्थके अवग्रहादि चारों ज्ञान होते हैं और व्यक्त पदार्थका केवल अवग्रह ही होता है। व्यक्त पदार्थके अवग्रहको अर्थावग्रह कहते हैं और अव्यक्त पदार्थके अवग्रहको व्यंजनावग्रह कहते हैं। व्यंजनावग्रह चक्षु और मनके सिवाय शेष चार इन्द्रियों से होता है इसलिये उसके चार भेद हुए और अर्थके अवग्रह आदि चारों ज्ञान होते हैं तथा प्रत्येक ज्ञान पाँचों इन्द्रियों और छठें मनसे होता है इसलिए चौबीस भेद हुए। इनमें व्यंजनावग्रहके चार भेद मिलानेसे अट्ठाईस भेद हुए तथा अर्थरूप और व्यंजनरूप विषयके बारह भेद हैं—बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त और ध्रुव तथा इनके प्रतिपक्षी—एक, एकविध, अक्षिप्र, निसृत, उक्त और अध्रुव। इन बारहों प्रकारके विषयोंका अट्ठाईस-अट्ठाईस प्रकारका ज्ञान होनेसे मतिज्ञानके तीन सौ छत्तीस भेद हैं।

२९६. प्र०—बहु, बहुविध आदिका क्या स्वरूप है ?

उ०—जहाँ बहुत व्यक्तियोंका मतिज्ञान हो, उसके विषयको बहु कहते हैं। जहाँ बहुत जातियोंका मतिज्ञान हो उसके विषयको बहुविध कहते हैं। जैसे—बहुत सी गायोंको बहुज्ञान कहते हैं और काली, पीली आदि बहुत प्रकार की गायोंके ज्ञानको बहुविध ज्ञान कहते हैं। एक व्यक्तिको एक कहते हैं जैसे—एक गौ। एक जातिको एकविध कहते हैं जैसे—एक प्रकारकी अनेक गायें। क्षिप्र शीघ्रको कहते हैं, जैसे—शीघ्र गिरती हुई जलधारा। अक्षिप्र मन्दगतिसे चलती हुई वस्तुको कहते हैं, जैसे—मन्दगतिसे जाता हुआ घोड़ा। अनिसृत ढके हुए को कहते हैं, जैसे—जल में डूबा हुआ हाथी। निसृत प्रकटको कहते हैं, जैसे—जलसे बाहर खड़ा हुआ हाथी। अनुक्त बिना कहे हुए को कहते हैं, जैसे—बिना ही कुछ कहे किसीके अभिप्रायको जान लेना अनुक्तज्ञान है। उक्त कहे हुए को कहते हैं, जैसे—किसीने कहा यह घट है। ध्रुव स्थिर-को कहते हैं, जैसे—पर्वत। अध्रुव अस्थिर को कहते हैं, जैसे—क्षण स्थायी बिजली।

२९७. प्र०—श्रुतज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थका अवलम्बन लेकर उसी पदार्थसे सम्बद्ध अन्य पदार्थके ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते हैं।

२९८. प्र०—श्रुतज्ञानके भेद कितने हैं ?

उ०—श्रुतज्ञानके दो भेद हैं—एक अक्षरात्मक और दूसरा अनक्षरात्मक।

२९९. प्र०—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—जो श्रुतज्ञान अक्षरके निमित्तसे उत्पन्न नहीं होता किन्तु लिंग (चिह्न) के निमित्तिसे उत्पन्न होता है, उसे अनक्षरात्मक अथवा लिंगज श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे—शीतलवायुका स्पर्श होनेपर शीतलवायु जानना तो मतिज्ञान है और उसके पश्चात् ही वातप्रकृतिवालेको यह शीतलवायु हानिकारक है, ऐसा जानना अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

३००. प्र०—अक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—अक्षररूप शब्दके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाले श्रुतज्ञानको अक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे—जीव है ऐसा करने पर श्रोत्रेन्द्रियके द्वारा जो शब्दका ज्ञान हुआ वह तो मतिज्ञान है और उस ज्ञानके पश्चात् जीव नामक पदार्थ है, ऐसा जो ज्ञान हुआ वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

३०१. प्र०—अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—एक अंगप्रविष्ट और दूसरा अंगबाह्य।

३०२. प्र०—अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—भगवान् तीर्थङ्करने केवलज्ञानके द्वारा सब पदार्थोंको जानकर दिव्यध्वनिके द्वारा उपदेश दिया। उनके साक्षात् शिष्य गणधरने उस उपदेशको अपनी स्मृतिमें रखकर बाहर अंगोंमें संकलित किया। यह अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान है।

३०३. प्र०—अंगबाह्य श्रुतज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—आचार्योंने अल्पबुद्धि शिष्योंपर दया करके उन अंग-ग्रन्थोंके आधारपर जो ग्रन्थ रचे वे अंगबाह्य कहलाते हैं।

३०४. प्र०—अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानके भेद कितने हैं ?

उ०—बारह हैं—आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अन्तःकृद्दश, अनुत्तरोपपादिकदश, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद।

---

३०४. अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानके बारह भेदोंमें किन-किन विषयोंका वर्णन है यह जानने के लिए देखो—जयधवला, १ भाग, पृ० १२२-१३२।

३०५. प्र०—बारहवें दृष्टिवाद अंगके कितने भेद हैं ?

उ०—पाँच भेद हैं--परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्व और चूलिका।

३०६. प्र०—पूर्वके कितने भेद हैं ?

उ०—चौदह भेद हैं—उत्पादपूर्व, अग्रायणी, वीर्यप्रवाद, अस्ति-नास्ति-प्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यानप्रवाद, विद्यानुवाद, कल्याणप्रवाद, प्राणावाय, क्रियाविशाल और लोकबिन्दुसार।

३०७. प्र०—अवधिज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादा लिये जो रूपी पदार्थोंको स्पष्ट जाने।

३०८. प्र०—अवधिज्ञानके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय।

३०९. प्र०—भवप्रत्यय अवधिज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—भवके निमित्तिसे होनेवाले अवधिज्ञानको भवप्रत्यय कहते हैं। अर्थात् जो जीव नारकी या देवकी पर्याय धारण करता है, उसके अवधिज्ञान अवश्य होता है, इसलिये उसे भवप्रत्यय कहते हैं।

३१०. प्र०—भवप्रत्यय अवधि किसके होता है ?

उ०—भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवों, नारकियों और तीर्थङ्करोंके होता है।

३११. प्र०—गुणप्रत्यय अवधि किसको कहते हैं ?

उ०—गुण अर्थात् व्रत नियम वगैरहके निमित्तिसे होनेवाले अवधिज्ञानको गुणप्रत्यय कहते हैं।

३१२. प्र०—गुणप्रत्यय अवधि किसके होता है ?

उ०—मनुष्य और तिर्यञ्चों के।

३१३. प्र०—दूसरे प्रकारसे अवधिज्ञानके कितने भेद हैं ?

उ०—तीन भेद हैं—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। इनमेंसे देशावधि तो भवप्रत्यय भी होता है और गुणप्रत्यय भी। शेष दोनों गुणप्रत्यय ही होते हैं।

३१४. प्र०—तीनों अवधिज्ञान किसके होते हैं ?

उ०—जघन्य देशावधि तो मनुष्य और तिर्यञ्चोंके ही होता है, देव नारकियोंके नहीं होता। उत्कृष्ट देशावधि संयमी मनुष्योंके ही होता है और परमावधि तथा सर्वावधि चरमशरीरी महाव्रती मनुष्योंके ही होते हैं।

३१५. प्र०—मनःपर्यय ज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—दूसरेके मनमें स्थिर रूपी पदार्थको जो स्पष्ट जाने उसे मनःपर्यय ज्ञान कहते हैं।

३१६. प्र०—मनःपर्यय ज्ञानके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—एक ऋजुमति और दूसरा विपुलमति।

३१७. प्र०—ऋजुमति मनःपर्यय किसको कहते हैं ?

उ०—दूसरेके मनमें सरल रूपसे स्थित रूपी पदार्थको जो स्पष्ट जाने।

३१८. प्र०—विपुलमति मनःपर्यय किसको कहते हैं ?

उ०—दूसरेके मनमें सरल अथवा जटिल रूपसे स्थित रूपी पदार्थको जो स्पष्ट जाने।

३१९. प्र०—ऋजुमति और विपुलमतिमें क्या अन्तर है ?

उ०—ऋजुमति मनःपर्यय अपने और अन्य जीवोंके स्पर्शनादि इन्द्रिय और मन, वचन काययोगकी अपेक्षासे उत्पन्न होता है। किन्तु विपुलमति मनःपर्यय अवधिज्ञानकी तरह इनकी अपेक्षाके बिना ही उत्पन्न होता है तथा ऋजुमति विशुद्ध परिणामोंकी घटवारी होनेसे प्रतिपाती है। किन्तु विपुलमति अप्रतिपाती है, केवलज्ञान उत्पन्न होने तक बना रहता है।

३२०. प्र०—मनःपर्यय ज्ञान किसके होता है ?

उ०—प्रमत्त आदि सात गुणस्थानोंमें ऋद्धिधारी और वर्धमान चरित्रवाले महामुनियोंके ही होता है।

३२१. प्र०—सकल प्रत्यक्ष किसको कहते हैं ?

उ०—केवलज्ञान को।

३२२. प्र०—केवलज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—प्रतिपक्षी चार घातिया कर्मोंके नाश हो जानेसे, इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना सम्पूर्ण पदार्थोंको जो एक साथ जानता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

३२३. प्र०—कुमतिज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—मिथ्यात्वसहित इन्द्रियजन्य ज्ञानको कुमतिज्ञान कहते हैं। कुमतिज्ञानी बिना कहे स्वयं ही दूसरोंको कष्ट पहुँचाने वाले कार्योंमें प्रवृत्ति करता है।

३२४. प्र०—कुश्रुतज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—मिथ्यात्वसहित श्रुतज्ञानको कुश्रुतज्ञान कहते हैं।

३२५. प्र०—कुअवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—मिथ्यात्वसहित अवधिज्ञानको कुअवधि या विभंगज्ञान कहते हैं।

३२६. प्र०—किन गुणस्थानोंमें कौन-कौन ज्ञान होते हैं ?

उ०—कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान आदिके दो गुणस्थानोंमें होते हैं किन्तु इतनी विशेषता है कुमति और कुश्रुत एकेन्द्रिय आदिके भी होते हैं जब कि कुअवधि सैंनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकके ही होता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान चौथेसे बारहवें गुणस्थान तक होते हैं। मनःपर्यय छठेसे बारहवें गुणस्थान तक होता है और केवलज्ञान तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानोंमें तथा सिद्धोंमें होता है।

३२७. प्र०—संयम किसको कहते हैं ?

उ०—अहिंसा आदि व्रतोंको धारण करने, ईर्या आदि समितियोंको पालने, क्रोध आदि कषायोंका निग्रह करने, मन, वचन, कायरूप दण्डका त्याग करने और स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियोंको जीतनेका नाम संयम है।

३२८. प्र०—संयम मार्गणाके कितने भेद हैं ?

उ०—सात भेद हैं—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात, संयमासंयम और असंयम।

३२९. प्र०—सामायिक संयम किसको कहते हैं ?

उ०—'मैं सब प्रकारके सावद्ययोगका त्याग करता हूँ' इस प्रकार सकल सावद्ययोगके त्यागको सामायिक संयम कहते हैं।

३३०. प्र०—छेदोपस्थापना संयम किसको कहते हैं ?

उ०—उस एक व्रतका छेद अर्थात् दो, तीन आदि भेद करके उपस्थापन अर्थात् धारण करनेको छेदोपस्थापना संयम कहते हैं।

३३१. प्र०—परिहारविशुद्धि संयम किसको कहते हैं ?

उ०—हिंसाका परिहार ही जिसमें प्रधान है ऐसे संयमको परिहारविशुद्धि संयम कहते हैं।

३३२. प्र०—परिहारविशुद्धि संयम किसके होता है ?

उ०—तीस वर्ष तक इच्छानुसार भोगोंको भोगकर और सामायिक या छेदोपस्थापना संयम धारण करके जो प्रत्याख्यान पूर्वक भले प्रकार अध्ययन करता है और तपोविशेषसे परिहार ऋद्धिको प्राप्त कर लेता है, ऐसा तपस्वी मनुष्य तीर्थङ्करके पादमूलमें परिहारविशुद्धि संयम को धारण करता है।

३३३. प्र०—सूक्ष्मसाम्पराय संयम किसको कहते हैं ?

उ०—सामायिक अथवा छेदोपस्थापना संयमको धारण करनेवाले मुनि-

को कषाय जब अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है तब वे सूक्ष्मसाम्पराय संयमी कहे जाते हैं।

३३४. प्र०—यथाख्यात संयम किसको कहते हैं ?

उ०—समस्त मोहनीयकर्मके उपशमसे अथवा क्षयसे जैसा आत्माका निर्विकार स्वभाव है वैसा ही स्वभाव हो जाना यथाख्यात चारित्र है।

३३५. प्र०—संयमासंयम किसको कहते हैं ?

उ०—सम्यग्दर्शनपूर्वक पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंके धारण करनेको संयमासंयम कहते हैं।

३३६. प्र०—असंयम किसको कहते हैं ?

उ०—जीव-हिंसा और इन्द्रियोंके विषयोंसे विरत न होनेको असंयम कहते हैं।

३३७. प्र०—किन गुणस्थानोंमें कौन सा संयम होता है ?

उ०—सामायिक और छेदोपस्थापना छठेसे नौवें गुणस्थान तक होते हैं। परिहारविशुद्धि छठे और सातवें गुणस्थानमें होता है। सूक्ष्मसाम्पराय संयम केवल दसवें गुणस्थानमें होता है। यथाख्यात संयम ग्यारहसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तक होता है। संयमासंयम पाँचवें गुणस्थानमें होता है और असंयम आदिके चार गुणस्थानमें होता है।

३३८. प्र०—दर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—सामान्य विशेषात्मक बाह्य पदार्थोंको अलग-अलग भेद रूपसे ग्रहण न करके जो सामान्य ग्रहण होता है, उसको दर्शन कहते हैं। अर्थात् विषय और विषयीके योग्य देशमें होनेकी पूर्वावस्थाको दर्शन कहते हैं।

३३९. प्र०—दर्शन कब होता है ?

उ०—ज्ञानके पहले दर्शन होता है। बिना दर्शनके अल्पज्ञानियोंको ज्ञान नहीं होता। परन्तु सर्वज्ञ देवके ज्ञान और दर्शन एक साथ होते हैं।

३४०. प्र०—दर्शनके कितने भेद हैं ?

उ०—चार—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

३४१. प्र०—चक्षुदर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—चक्षु इन्द्रियसे होनेवाले मतिज्ञानके पहले जो सामान्य ग्रहण होता है, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं।

३४२. प्र०—अचक्षुदर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—चक्षुके सिवाय अन्य इन्द्रियों और मन सम्बन्धी मतिज्ञानके पहले जो सामान्य ग्रहण होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं।

३४३. प्र०—अवधिदर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—अवधिज्ञानसे पहले होनेवाले सामान्य ग्रहणको अवधिदर्शन कहते हैं।

३४४. प्र०—केवलदर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—केवलज्ञानके साथ होनेवाले सामान्य ग्रहणको केवलदर्शन कहते हैं।

३४५. प्र०—कौन सा दर्शन किन गुणस्थानोंमें होता है ?

उ०—चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन बारहवें गुणस्थान तक होते हैं। अवधिदर्शन चौथेसे बारहवें गुणस्थान तक होता है और केवलदर्शन तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानमें और सिद्धोंमें होता है।

३४६. प्र०—लेश्या किसको कहते हैं ?

उ०—कषायसे अनुरंजित काययोग, वचनयोग और मनोयोगकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं।

३४७. प्र०—लेश्याके कितने भेद हैं ?

उ०—कषायका उदय छै प्रकारका होता है—तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर, मन्दतम—कषायके उदयके इन छै प्रकारोंके क्रमानुसार लेश्याके भी छै भेद होते हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या।

३४८. प्र०—कौन लेश्या किन गुणस्थनोंमें होती है ?

उ०—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या, चौथे गुणस्थान तक, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या सातवें गुणस्थान तक और शुक्ललेश्या तेरहवें गुणस्थान तक होती है।

३४९. प्र०—भव्य मार्गणाके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—भव्य और अभव्य।

३५०. प्र०—भव्य-अभव्य किसको कहते हैं ?

उ०—जो जीव आगे मुक्ति प्राप्त करेंगे उन्हें भव्य कहते हैं और मुक्ति-गमनकी योग्यता न रखनेवाले जीवोंको अभव्य कहते हैं।

३५१. प्र०—भव्य-अभव्यके कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—भव्य जीवोंके चौदह गुणस्थान होते हैं और अभव्योंके केवल एक पहला गुणस्थान ही होता है।

३५२. प्र०—सम्यक्त्व किसको कहते हैं ?

---

३४८. इस सम्बन्धमें विशेष जाननेके लिए देखो—षट्खण्डागम, १ पु०, पृ० ३९२-३९३।

उ०—जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कहे गये छै द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नौ पदार्थोंका श्रद्धान करनेको सम्यक्त्व कहते हैं।

३५३. प्र०—सम्यक्त्व मार्गणाके कितने भेद हैं ?

उ०—छै भेद हैं—उपशम सम्यक्त्व, वेदक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सासादन सम्यक्त्व और मिथ्यात्व।

३५४. प्र०—उपशम सम्यक्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व मोहनीय, इन सात कर्मप्रकृतियोंके उपशमसे, कीचड़के नीचे बैठ जानेसे निर्मल हुए जलके समान जो पदार्थोंका निर्मल श्रद्धान होता है उसे उपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसके दो भेद हैं—प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व।

३५५. प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसको होता है ?

उ०—चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें वर्तमान भव्य, सैनी पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्तक, विशुद्ध परिणामी साकार उपयोगी, शुभलेश्या वाले और करण-लब्धिसे सहित अनादि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि जीवको ही प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है।

३५६. प्र०—लब्धियाँ कितनी हैं ?

उ०—पाँच हैं—क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धि लब्धि, देशना लब्धि, प्रायोग्य लब्धि और करण लब्धि। इनमेंसे चार लब्धियाँ तो भव्य, अभव्य सभीके होती हैं, किन्तु करण लब्धि भव्यके ही होती है और उसके होने पर सम्यक्त्व अवश्य होता है।

३५७. प्र०—क्षयोपशम लब्धि किसको कहते हैं ?

उ०—जिस समय कर्मोंका अनुभाग प्रतिसमय अनन्तगुणा घटता हुआ उदयमें आता है तब क्षयोपशम लब्धि होती है। क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागके अनन्तवें भाग मात्र देशघाती स्पर्द्धकोंका उदयाभाव रूपक्षय और उदयको न प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकोंका सदवस्था रूप उपशमकी प्राप्तिका नाम क्षयोपशम लब्धि है।

३५८. प्र०—विशुद्धि लब्धि किसको कहते हैं ?

उ०—क्षयोपशम लब्धिके होने से साता वेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके बन्धमें कारण जो धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम होता है उसकी प्राप्तिको विशुद्धि लब्धि कहते हैं।

---

३५३. लब्धिसार, गा० २।

३५९. प्र०—देशना लब्धि किसको कहते हैं ?

उ०—छै द्रव्य और नौ पदार्थोंका उपदेश करनेवाले आचार्य वगैरहके लाभको अथवा उपदेशित पदार्थकी धारणाके लाभको देशनालब्धि कहते हैं।

३६० प्र०—प्रायोग्य लब्धि किसको कहते हैं ?

उ०—ऊपर कही गयी तीन लब्धियों से युक्त जीव प्रति समय विशुद्ध होता हुआ आयुके बिना शेष सात कर्मोंकी स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण शेष रखता है तथा पहले जो अनुभाग था, उसमें अनन्तका भाग देने पर बहुभाग प्रमाण अनुभागको देखकर शेष एक भाग प्रमाण अनुभागको रखता है। इस कार्यको करनेकी योग्यताके लाभको प्रायोग्य लब्धि कहते हैं।

३६१. प्र०—करण लब्धि किसको कहते हैं ?

उ०—अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणामोंके लाभको करण लब्धि कहते हैं। इसका स्वरूप पहले कहा जा चुका है।

३६२. प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति किस प्रकार होती है ?

उ०—अनिवृत्तिकरण काल अन्तर्मुहूर्तके संख्यात भागोंमेंसे बहु भाग काल बीत जाने पर जब एक भाग काल शेष रहता है तब प्रथम सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ अनादि मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्वका अन्तरकरण करता है और सादिमिथ्यादृष्टि जीव दर्शन मोहनीयका अन्तरकरण करता है। वह सत्तामें स्थित मिथ्यात्व प्रकृतिके द्रव्यको मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति रूप परिणमाता है।

३६३ प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्वके छूटनेपर क्या अवस्था होती है ?

उ०—उपशम सम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्तकाल बीतने पर अनादि मिथ्यादृष्टि-के तो मिथ्यात्वका उदय होता है और सादि मिथ्यादृष्टि या तो मिथ्यादृष्टि होकर वेदक अथवा उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है या सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है।

३६४. प्र०—अन्तरकरण किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मका अन्तरकरण करना हो उसकी प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थितिको छोड़कर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थितिके निषेकोंका अभाव करने को *अन्तरकरण* कहते हैं। *जैसे—मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्वकर्मका* अन्तरकरण करता है। इसमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। सो वह अनादिकालसे उदयमें आनेवाले मिथ्यात्वकर्मको अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति सम्बन्धी निषेकोंको छोड़कर उससे ऊपरके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिके निषेकोंको अपने स्थानसे

---

३६२. षट्खण्डागम, खं० १, भा० ६, चूलिका ८।

उठाकर कुछको प्रथम स्थिति (नीचेकी स्थिति) सम्बन्धी निषेकोंमें मिला देता है और कुछको द्वितीय स्थिति (ऊपरकी स्थिति) सम्बन्धी निषेकोंमें मिला देता है। इस तरह वह तब तक करता रहता है जब तक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिके पूरे निषेक समाप्त न हो जायें। जब मध्यवर्ती समस्त निषेक ऊपरकी अथवा नीचेकी स्थितिके निषेकोंमें दे दिये जाते हैं और प्रथम स्थिति तथा द्वितीय स्थितिके बीचका अन्तरायाम मिथ्यात्व कर्मके निषेकोंसे सर्वथा शून्य हो जाता है तब अन्तरकरण पूर्ण हो जाता है।

३६५. प्र०—वेदक अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—अनन्तानुबन्धी कषायका अप्रशस्त उपशम अथवा विसंयोजन होनेपर और मिथ्यात्व तथा सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिका प्रशस्त उपशम अथवा अप्रशस्त उपशम अथवा क्षयोन्मुख होनेपर तथा देशघाती सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेपर जो तत्त्वार्थश्रद्धान होता है उसे वेदकसम्यक्त्व कहते हैं। इसी-को क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भी कहते हैं क्योंकि सर्वघाती अनन्तानुबन्धी कषाय मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्वका उदयाभाव रूपक्षय तथा सदवस्थारूप उपशम होनेपर और देशघाती सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेपर वेदक सम्य-क्त्व होता है। इससे इसीका दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है।

३६६. प्र०—अप्रशस्त उपशम या देशोपशम किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें विवक्षित प्रकृति उदय आने योग्य तो न हो किन्तु उसका स्थिति अनुभाग घटाया बढ़ाया जा सके अथवा संक्रमण वगैरह किये जा सकें, उसे अप्रशस्त उपशम या देशोपशम कहते हैं।

३६७. प्र०—प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम किसको कहते हैं ?

उ०—जिसमें विवक्षित प्रकृति न तो उदय आने योग्य हो हो और न उसका स्थिति अनुभाग घटाया जा सके तथा न संक्रमण वगैरह ही किया जा सके उसे प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम कहते हैं।

३६८. प्र०—वेदक सम्यक्त्वकी स्थिति कितनी है ?

उ०—वेदक सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति छियासठ सागर प्रमाण है।

३६९. प्र०—क्षायिक सम्यक्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—अनन्तानुबन्धो क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्-मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन सात प्रकृतियोंके क्षयसे जो निर्मल श्रद्धान होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है।

३७०. प्र०—क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका क्या क्रम है ?

उ०—असंयत, देश संयत, प्रमत्त संयत अथवा अप्रमत्त संयत गुणस्थान-वर्ती वेदक सम्यग्दृष्टि मनुष्य पहले तो अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति-करणके अन्तमें अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभका संवियोजन करता है अर्थात् उन्हें बारह कषाय और नव नोकषाय रूप कर देता है। उसके पश्चात् दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका आरम्भ करता है।

३७१. प्र०—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका आरम्भ कहाँ करता है?

उ०—अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंमें स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोंमें जहाँ जिस काल-में केवली तीर्थङ्कर होते हैं वहाँ उस कालमें कर्मभूमिया मनुष्य ही दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका आरम्भ करता है।

३७२. प्र०—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक कौन कहलाता है?

उ०—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाके लिए किये गए अधःकरणके प्रथम समयसे लेकर जबतक जीव मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिका द्रव्यको सम्यक्त्व प्रकृतिरूप संक्रमण कराता है तबतक उसे दर्शनमोहको क्षपणाका प्रस्थापक कहते हैं।

३७३. प्र०—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका निष्ठापक कब कहलाता है?

उ०—कृतकृत्य वेदक होनेके प्रथम समयसे लेकर आगेके समयोंमें दर्शन मोहकी क्षपणा करनेवाला जीव निष्ठापक कहलाता है।

३७४. प्र०—कृतकृत्य वेदक किसको कहते हैं?

उ०—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाके लिये किये गये तीन करणोंमेंसे अनिवृत्ति-करणके अन्त समयमें सम्यक्त्व प्रकृतिके अन्तिम फालिके द्रव्यको नीचेके निषेकोंमें क्षेपण करनेके पश्चात् अनन्तर समयसे लगाकर अनिवृत्तिकरण कालके संख्यातवें भाग मात्र अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त जीव कृतकृत्य वेदक कहा जाता है क्योंकि जिसने करने योग्य कार्य कर लिया उसे कृतकृत्य कहते हैं सो दर्शनमोहको क्षपणाके योग्य कार्य अनिवृत्तिकरण कालके अन्त समयमें हो हो जाता है। अतः वह कृतकृत्य वेदक कहा जाता है।

३७५. प्र०—दर्शन मोहकी क्षपणाका निष्ठापन कहाँ करता है?

उ०—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका आरम्भ करनेवाला मनुष्य कृतकृत्य वेदक होनेके पश्चात् आयुका क्षय होनेसे यदि मरणको प्राप्त होता है तो सम्यक्त्व ग्रहण करनेसे पहले बाँधी हुई आयुके अनुसार चारों गतियोंमें उत्पन्न होकर दर्शन मोहनीयकी क्षपणाको पूर्ण करता है। उसमें इतना विशेष

---

३७५. षट्खण्डागम, पु० ४, पृ० २६।

उठा है कि कृतकृत्य वेदकके कालके चार भाग करके उनमेंसे यदि प्रथम भागमें मरता है तो नियमसे देव ही होता है, दूसरे भागमें मरनेसे देव या मनुष्य होता है; तीसरे भागमें मरनेसे देव, मनुष्य या तिर्यञ्च होता है और चौथे भागमें मरनेसे चारोंमेंसे किसी भी गतिमें जन्म लेता है।

३७६. प्र०—क्षायिक सम्यक्त्वकी कितनी स्थिति है ?

उ०—अन्य सम्यक्त्वोंकी तरह क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होकर छूटता नहीं है। फिर भी क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके पश्चात् क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवके संसारमें रहनेकी अपेक्षासे क्षायिक सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त आठ वर्ष कम दो पूर्व कोटी और तैंतीस सागरसे कुछ अधिक है क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम तो उसी भवसे मुक्त हो जाता है जिस भवमें उसने दर्शनमोहका क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया है। यदि क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करनेसे पहले उसने परभवकी आयु बांध ली हो तो वह तीसरे भवसे मुक्त हो जाता है और यदि उसने मनुष्य या तिर्यञ्चकी आयु बांधी हो तो चौथे भवमें अवश्य मुक्त हो जाता है।

३७७. प्र०—क्षायिक सम्यक्त्व किन गुणस्थानोंमें रहता है ?

उ०—चौथेसे चौदहवें गुणस्थान तक।

३७८. प्र०—औपशमिक सम्यक्त्व कितने गुणस्थानोंमें रहता है ?

उ०—प्रथमोपशम सम्यक्त्व चौथेसे सातवें गुणस्थान तक और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चौथेसे ग्यारहवें गुणस्थान तक रहता है।

३७९. प्र०—क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कितने गुणस्थानों में रहता है ?

उ०—चौथेसे सातवें गुणस्थान तक।

३८०. प्र०—किस गतिमें कितने सम्यक्त्व होते हैं ?

उ०—प्रथम नरकमें तीनों सम्यक्त्व पाये जाते हैं, किन्तु शेष छे नरकोंमें क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता। तिर्यञ्चों, मनुष्यों और देवोंमें तीनों सम्यक्त्व पाये जाते हैं। केवल इतनी विशेषता है कि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें तथा देवियोंमें क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता।

३८१. प्र०—संज्ञी किसको कहते हैं ?

उ०—जो जीव मनकी सहायतासे शिक्षा वगैरहको ग्रहण कर सकता है उसे संज्ञी कहते हैं और जो ऐसा नहीं कर सकता उसे असंज्ञी कहते हैं।

३८२. प्र०—संज्ञीके कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—संज्ञीके प्रथमसे लेकर बारह गुणस्थान होते हैं और असंज्ञीके केवल एक पहला गुणस्थान ही होता है।

३८३. प्र०—आहारक किसको कहते हैं ?

उ०—औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरोंमेंसे अपने योग्य किसी एक शरीर, भाषा तथा मनके योग्य पुद्गल वर्गणाओंको जो जीव नियमसे ग्रहण करता है उसे आहारक कहते हैं और औदारिक आदि शरीरके योग्य पुद्गल वर्गणाओंके ग्रहण न करनेवाले जीवोंको अनाहारक कहते हैं।

३८४. प्र०—अनाहारक जीव कौन हैं ?

उ०—विग्रहगतिमें स्थित जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली तथा अयोगकेवली और सिद्ध जीव नियमसे अनाहारक होते हैं, शेष जीव आहारक होते हैं।

३८५. प्र०—आहारकके कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—आहारकके पहलेसे लेकर तेरह गुणस्थान तक होते हैं।

३८६. प्र०—अनाहारकके कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—अनाहारकोंके पाँच गुण स्थान होते हैं—पहला, दूसरा, चौथा, तेरहवाँ और चौदहवाँ।

●

८

३८७. प्र०—अनुयोगद्वार कितने हैं ?

उ०—सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्प बहुत्व ये आठ अनुयोगद्वार हैं।

३८८. प्र०—अनुयोगद्वारोंका क्या प्रयोजन है ?

उ०—ये आठ अनुयोगद्वार अर्थात् अधिकार अवश्य ही जानने चाहिये क्योंकि इनकी जानकारीके बिना गुणस्थान और मार्गणास्थानोंका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो सकता।

३८९. प्र०—सत्प्ररूपणा किसका कथन करती है ?

उ०—सत्प्ररूपणा पदार्थोंके अस्तित्वका कथन करती है। उस कथनके दो प्रकार हैं—एक ओघ कथन और एक आदेश कथन। सामान्य कथनको ओघ

कहते हैं। जैसे—मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है, सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान है आदि, और विशेष रूपसे कथन करनेको आदेश कहते हैं। जैसे—नारकी जीवोंके चार गुणस्थान होते हैं, तिर्यञ्चोंके पाँच गुणस्थान होते हैं आदि।

३९०. प्र०— संख्या अनुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—सत्प्ररूपणामें जिन पदार्थोंका अस्तित्व कहा गया है उनकी संख्याका कथन संख्या अनुयोगमें होता है। जैसे—मिथ्यादृष्टि अनन्त हैं, सासादन सम्यग्दृष्टि पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। इस कथनके भी दो प्रकार हैं—ओघ और आदेश।

३९१. प्र०—क्षेत्र अनुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—उक्त दोनों अनुयोगोंके द्वारा जाने हुए द्रव्योंकी वर्तमान अवगाहनाका कथन क्षेत्रानुयोग करता है। जैसे—मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोकमें रहते हैं, इसके भी पूर्ववत् दो भेद हैं।

३९२. प्र०—स्पर्शनानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—उक्त तीन अनुयोगोंके द्वारा जाने हुए द्रव्योंके अतीतकाल विशिष्ट क्षेत्रका कथन अर्थात् भूतकालमें जितने क्षेत्रको स्पर्श किया है और वर्तमानमें जितने क्षेत्रको स्पर्श किया जा रहा है, उसका कथन स्पर्शनानुयोग करता है। इस कथनके भी पूर्ववत् दो प्रकार हैं।

३९३. प्र०—कालानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—पूर्वोक्त चार अनुयोगोंके द्वारा जाने गये द्रव्योंके कालका कथन कालानुयोग करता है। जैसे—मिथ्यादृष्टि जीव सर्वदा पाये जाते हैं। इसके भी पूर्ववत् दो प्रकार हैं।

३९४. प्र०—अन्तरानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—जिन पदार्थोंके अस्तित्व, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन और कालका ज्ञान हो गया है उनके अन्तर कालका कथन अन्तरानुयोग करता है। जैसे—एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्तरकाल कमसे कम अन्तर्मुहूर्त है।

३९५. प्र०—भावानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—उक्त अनुयोगोंके द्वारा ज्ञात द्रव्योंके भावोंका कथन भावानुयोग करता है। जैसे—मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें औदायिक भाव होता है आदि। इस कथनके भी पूर्ववत् दो प्रकार हैं।

३९६. प्र०—अल्पबहुत्वानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—उक्त अनुयोगोंके द्वारा जाने हुए द्रव्योंके अल्प-बहुत्व हीनता, अधिकताका कथन अल्पबहुत्वानुयोग करता है। इस कथनके भी पूर्ववत् दो प्रकार हैं।

३९७. प्र०—मिथ्यादृष्टि जीव कितने हैं?

उ०—अनन्त हैं।

३९८. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने हैं?

उ०—पल्योपम असंख्यातवें भाग हैं।

३९९. प्र०—प्रमत्तसंयत जीव कितने हैं?

उ०—कोटिपृथक्त्व प्रमाण हैं। 'पृथक्त्व' से तीन कोटिके ऊपर और नौ कोटिके नीचे जितनी संख्या है वह लेना चाहिए। अतः प्रमत्तसंयत जीवोंका प्रमाण पाँच करोड़, तेरानबे लाख, अट्ठानबे हजार, दो सौ छह है।

४००. प्र०—अप्रमत्तसंयत जीव कितने हैं?

उ०—संख्यात हैं, अर्थात् प्रमत्तसंयत जीवोंके प्रमाणसे अप्रमत्तसंयत जीवोंका प्रमाण आधा है, क्योंकि प्रमत्तसंयत गुणस्थानके कालसे अप्रमत्तसंयत गुणस्थानका काल संख्यातगुणा हीन है।

४०१. प्र०—उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें जीवोंका प्रमाण कितना है?

उ०—उपशम श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें एक समयमें जघन्यसे एक जीव प्रवेश करता है और उत्कृष्टसे चौवन जीव प्रवेश करते हैं। यह सामान्य कथन है। विशेषकी अपेक्षा निरन्तर आठ समय पर्यन्त उपशम श्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंमें अधिकसे अधिक प्रथम समयमें सोलह, दूसरे समयमें चौबीस, तीसरे समयमें तीस, चौथे समयमें छत्तीस, पाँचवें समयमें बयालीस, छठे समयमें अड़तालीस, सातवें समयमें चौवन और आठवें समयमें भी चौवन जीव उपशम श्रेणीपर चढ़ते हैं। इस सबका प्रमाण तीन सौ चार होता है।

४०२. प्र०—क्षपक श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें जीवों का प्रमाण कितना है?

उ०—छै महीना। आठ समयमें क्षपक श्रेणीके योग्य आठ समय होते हैं। उनमें जघन्यसे एक जीव एक समयमें और उत्कृष्टसे एक सौ आठ जीव क्षपक गुणस्थानमें प्रवेश करते हैं। यह सामान्य कथन है। विशेषसे क्षपकश्रेणीवालोंका प्रमाण उपशम श्रेणीवालोंसे दुगुना है।

४०३. प्र०—सयोगकेवली जीव कितने हैं?

उ०—सयोगकेवली जीवोंकी संख्या आठ लाख, अट्ठानबे हजार, पाँच सौ दो है।

४०४. प्र०—अयोगकेवली जीव कितने हैं ?

उ०—अयोगकेवली जीवोंका प्रमाण क्षपक श्रेणीवाले जीवोंके बराबर ही होता है।

४०५. प्र०—मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?

उ०—सर्वलोकमें रहते हैं।

४०६. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?

उ०—लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। किन्तु इतना विशेष है कि प्रतर समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली लोकके असंख्यात बहुभाग प्रमाण क्षेत्रमें और लोकपूरण समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली सर्वलोकमें रहते हैं।

४०७. प्र०—मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?

उ०—सर्वलोक स्पर्श किया है।

४०८. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?

उ०—लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है और विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात तथा वैक्रियिक समुद्घातगत सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है और मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टी जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम बारह भाग प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है। जो इस प्रकार है—सुमेरु पर्वतके मूल भागसे लेकर ऊपर ईषत्प्राग्भार पृथिवी तक सात राजु होते हैं और नीचे छठी पृथिवी तक पाँच राजु होते हैं। उन दोनोंको मिला देनेसे सासादान सम्यग्दृष्टी जीवोंके मारणान्तिक क्षेत्रकी लम्बाई कुछ कम बारह राजु होती है।

४०९. प्र०—विहारवत्स्वस्थान वगैरहसे क्या अभिप्राय है ?

उ०—स्वस्थान, समुद्घात और उपपादके भेदसे जब जीवोंकी अवस्था तीन प्रकारकी होती है। उनमें स्वस्थानके दो प्रकार हैं—एक स्वस्थानस्वस्थान और दूसरा विहारवत्स्वस्थान। अपने उत्पन्न होनेके ग्राम आदिमें सोना, उठना-बैठना वगैरह स्वस्थानस्वस्थान है और अपने उत्पत्ति स्थानको छोड़कर अन्यत्र आना-जाना आदि विहारवत्स्वस्थान है। सात समुद्घातोंका स्व-

---

४०७. षट्खण्डागम, पु० ४, पृ० २६।

रूप पहले बतलाया है। उपपाद उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होता है। इन अवस्थाओंके द्वारा जीवने जितने क्षेत्रमें गमनागमन वगैरह किया हो उतना उसका स्पर्श होता है।

४१०. प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टी और असंयत सम्यग्दृष्टी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है?

उ०—स्वस्थानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है और विहारवत्स्वस्थान, वेदना कषाय और वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किया है जो कि मेरुके मूलसे ऊपर छै राजु और नीचे दो राजु प्रमाण है तथा उपपादकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टी जीवोंने कुछ कम छै बटे चौदह राजु भाग स्पर्श किया है; क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टी जीवोंका उपपाद क्षेत्र इससे नीचे नहीं है।

४११. प्र०—संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है?

उ०—लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्र स्पर्श किया है और मारणान्तिक समुद्घात अवस्थामें कुछ कम छै बटे चौदह राजु क्षेत्र स्पर्श किया है।

४१२. प्र०—प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है?

उ०—लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है किन्तु सयोगकेवलियोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है।

४१३. प्र०—मिथ्यादृष्टी जीव कितने काल तक होते हैं?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टी सदा रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा तीन प्रकार हैं—अनादि अनन्त, अनादि सान्त और सादि सान्त। अभव्य मिथ्यदृष्टीका काल अनादि अनन्त है क्योंकि अभव्यके मिथ्यात्वका आदि और अन्त नहीं होता। भव्य जीवके मिथ्यात्वका काल अनादि सान्त भी होता है और सादि सान्त भी होता है। सादि सान्त मिथ्यात्वका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है क्योंकि कोई सम्याग्मथ्यादृष्टी अथवा असंयत सम्यग्दृष्टी, अथवा संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्वमें रहकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको या असंयत सम्यक्त्वको या संयमासंयमको अथवा अप्रमत्त संयमको प्राप्त कर सकता है तथा एक जीवकी अपेक्षा सादि सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है। क्योंकि

एक बार सम्यक्त्व होके छूट जानेपर भी जीव अधिकसे अधिक कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन कालतक ही संसारमें ठहरता है।

४१४. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टी जीव कितने काल तक होते हैं ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय तक होते हैं और उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग कालतक होते हैं। खुलासा इस प्रकार है—पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र उपशम सम्यग्दृष्टी जीव उपशम सम्यक्त्वके कालमें एक समय मात्र शेष रहनेपर एक साथ सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए और एक समय तक सासादन सम्यग्दृष्टी रहकर दूसरे समयमें सबके सब मिथ्यात्वमें चले गये। उस समय तीनों लोकोंमें कोई भी सासादन सम्यग्दृष्टी नहीं रहा। इस तरह नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समय प्राप्त हुआ। पल्योपमके असंख्यातवें भाग उपशम सम्यग्दृष्टी जीव उपशम सम्यक्त्वके कालमें एक समयसे लेकर छै आवली अवशिष्ट रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। वे जब तक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होते तब तक अन्य भी उपशम सम्यग्दृष्टी सासादन गुणस्थानको प्राप्त होते रहते हैं। इस तरह उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल तक सासादन गुणस्थान पाया जाता है और एक जीवकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छै आवली है; क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके कालमें कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक छै आवली काल शेष रहने पर उपशम सम्यग्दृष्टी जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है और जितना उपशम सम्यक्त्वका काल शेष रहता है उतना ही सासादन गुणस्थानका काल होता है।

४१५. प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीव कितने काल तक होते हैं ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्टसे पल्योपम के असंख्यातवें भाग काल तक होते हैं। खुलासा इस प्रकार है—मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले मिथ्यादृष्टि अथवा वेदक सम्यक्त्व सहित असंयत सम्यग्दृष्टी संयतासंयत तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थान वाले जीव परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुए और वहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहरकर मिथ्यात्वको अथवा असंयत सम्यग्दृष्टीको प्राप्त हो गये। तब सम्यक् मिथ्यात्व नष्ट हो गया। इस प्रकार उसका काल अन्तर्मुहूर्त सिद्ध हुआ। इसी तरह पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए और वहाँ अन्तर्मुहूर्त कालतक रहे। जब तक वे वहाँ रहे तब तक अन्य भी पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यक् मिथ्यात्वको

प्राप्त होते रहे। इस तरह पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र कालतक सम्यक् मिथ्यात्व गुणस्थानमें जीव बने रहते हैं। उसके पश्चात् नियमसे उसमें कोई जीव नहीं रहता। एक जीवको अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीवका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु जघन्यसे उत्कृष्टकाल संख्यातगुणा है। इससे अधिक कालतक कोई जीव इस गुणस्थानमें नहीं ठहर सकता।

४१६. प्र०—असंयत सम्यग्दृष्टी जीव कितने काल तक होते हैं?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वदा होते हैं, उनका कभी अभाव नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेंतीस सागर है। जो इस प्रकार है—कोई प्रमत्तसंयत या अप्रमत्त संयत या उपशम श्रेणी वाला जीव मरकर एक समय कम तेतीस सागर आयु वाले अनुत्तर विमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटिको आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां अन्तर्मुहूर्त आयुके शेष रहने तक वह असंयत सम्यग्दृष्टी ही रहा। इसके पश्चात् अप्रमत संयमी होकर क्रमसे मुक्त हो गया। इस तरह अन्तर्मुहूर्त कम पूर्व कोटि अधिक तेतोस सागर असंयत सम्यग्दृष्टीका उत्कृष्ट काल होता है।

४१७. प्र०— ऊपर असंयत सम्यग्दृष्टी जीवको एक समय कम तेंतीस सागरकी आयु वाले देवोंमें ही क्यों उत्पन्न कराया है?

उ०—उसके बिना असंयत सम्यग्दृष्टी गुणस्थानका काल इतना नहीं बन सकता, क्योंकि जो पूरे तेंतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होगा। वह वर्ष पृथक्त्व आयुके शेष रहनेपर नियमसे संयम धारण कर लेगा और जो एक समय कम तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होगा वह अन्तर्मुहूर्त कम पूर्व कोटि काल तक असंयमके साथ रहकर फिर निश्चयसे संयम धारण करेगा।

४१८. प्र०—संयतासंयत जीव कितने काल तक होते हैं?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वदा होते हैं, उनका कभी अभाव नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष है। जो इस प्रकार है—कोई तिर्यञ्च या मनुष्य मिथ्यादृष्टी संज्ञो पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक सम्मूर्छन तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हुआ। सबसे लघु अन्तर्मुहूर्त कालमें पर्याप्त होकर, विश्राम लेता हुआ, विशुद्ध होकर संयमासंयमी हो गया और पूर्व कोटि काल तक संयमासंयमको पालकर मरकर देव हो गया। तब संयमासंयम छूट गया। इस तरह आदिके तीन अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि प्रमाण संयमासंयमका उत्कृष्ट काल है।

४१९. प्र०—प्रमत्त और अप्रमत्त संयत जीव कितने काल तक होते हैं ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वदा होते हैं। इनका एक क्षणके लिये भी कभी अभाव नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्त संयतका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। जो इस प्रकार है—कोई अप्रमत्तसंयत एक समय आयु शेष रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया और एक समय तक प्रमत्तसंयत रहकर मरकर देव हो गया। इसी तरह कोई प्रमत्तसंयत एक समय आयु शेष रहने पर अप्रमत्त संयत हो गया और एक समय तक अप्रमत्त संयत रहकर मरकर देव हो गया। इस तरह प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानका जघन्य काल एक समय होता है। एक अप्रमत्तसंयत प्रमत्तसंयत होकर और अन्तर्मुहूर्त तक वहां रहकर मिथ्यादृष्टि हो गया और एक प्रमत्तसंयत अप्रमत्त संयत होकर और एक अन्तमुंहूर्त तक रहकर प्रमत्तसंयत हो गया। इस तरहसे दोनोंका उत्कृष्ट काल अन्तमुंहूर्त होता है।

४२०. प्र०—चारों उपशम श्रेणीवाले जीव कितने काल तक होते हैं ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समयतक और उत्कृष्टसे अन्तमुंहूर्त तक होते हैं। जो इस प्रकार है—उपशम श्रेणीसे उतरनेवाले अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समय आयु शेष रहनेपर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती हुए और एक समय तक वहां रहकर दूसरे समयमें मरे और देव हो गये। इस तरह अपूर्वकरण उपशामकका जघन्य काल एक समय हुआ। इसी तरह शेष तीनों उपशामकोंका जघन्यकाल भी जानना। विशेष इतना है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामक जोवों का एक समय काल उपशमश्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए दोनों प्रकारसे होता है किन्तु उपशान्तकषाय उपशामकका एक समय काल चढ़ते हुए जीवों की अपेक्षा हो होता है। उत्कृष्ट काल इस प्रकार है—अनेक आप्रमत्त संयत जीव तथा उपशम श्रेणोसे उतरनेवाले अनेक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानी जोव अपूर्वकरण उपशामक हुए। जब तक वे उस गुणस्थानमें रहे तब तक अन्य भो चढ़ते-उतरते हुए जीव अपूर्वकरण गुणस्थानमें आते रहे और अन्तमुंहूर्त काल तक बने रहे। इसके पश्चात् अपूर्वकरणमें कोई भो जीव नहीं रहा। इसी तरह तीनों उपशामकोंका उत्कृष्टकाल समझ लेना चाहिये। एक जोवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका जघन्यकाल एक समय है जो उक्त एक समय कालकी तरह होता है। उत्कृष्टकाल अन्तमुंहूर्त है क्योंकि अपूर्वकरण आदि चारों गुणस्थानोंमें से प्रत्येकमें एक जीव अधिकसे अधिक अन्तमुंहूर्तकाल तक ठहर सकता है।

४२१. प्र०—चारों क्षपकों और अयोग केवलीका कितना काल है ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा और एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल भी और उत्कृष्टकाल भी सामान्यसे अन्तर्मुहूर्त है।

४२२. प्र०—सयोगकेवली कितने काल तक होते हैं ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वदा होते हैं, कभी भी इनका अभाव नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है क्योंकि कोई क्षीणकषाय सयोगकेवली ही अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर अयोगकेवली हो गया। उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी प्रमाण है, क्योंकि पूर्वकोटीकी आयु-वाला कोई मनुष्य आठ वर्षका होनेपर संयमी हुआ और फिर क्रमसे सयोग-केवली हुआ। वहाँ आठ वर्ष कुछ अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी कालतक रहकर अयोगकेवली हो गया।

●

६

४२३. प्र०—मिथ्यादृष्टिका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीवोंका कभी भी अभाव नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक सौ बत्तीस सागर है क्योंकि कोई मिथ्यादृष्टी जीव एक अन्तर्मुहूर्तके लिये सम्यग्दृष्टि होकर पुनः मिथ्यादृष्टी हो जाता है तथा कोई मिथ्यादृष्टि जीव कुछ कम छियासठ सागर कालतक सम्यग्दृष्टि रहकर अन्तिम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पुनः छियासठ सागरके लिये सम्यग्दृष्टि हो जाता है और अन्तर्मुहूर्त कम दो छियासठ सागरके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होता है। इस तरह एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक सौ बत्तीस सागर होता है।

४२४. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका अन्तर काल कितना है ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। क्योंकि कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग कालतक सासादन सम्यक्त्वमें कोई भी जीव नहीं पाया जाता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं; क्योंकि उपशम सम्यक्त्वसे गिरने पर ही सासादन सम्यक्त्व होता है और एक बार उपशम सम्यक्त्वमेंसे मिथ्यात्व आजानेपर

पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल बीतनेपर ही उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है। एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन है; क्योंकि एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्त संसारको अर्ध पुद्गल परावर्तनमात्र किया। पुनः अन्तर्मुहूर्त-तक सम्यग्दृष्टि रहकर वह सासादनसम्यक्त्वी हो गया। वहाँसे मिथ्यात्वमें चला गया और अर्धपुद्गल परावर्तन कालतक मिथ्यात्वमें रहकर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस तरह उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना।

४२५. प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यका असंख्यातवाँ भाग है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर-काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है। इसका उपपादन सासादन सम्यग्दृष्टिके अन्तरकालको दृष्टिमें रखकर कर लेना चाहिए।

४२६. प्र०—असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुण-स्थान तक प्रत्येक गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है; क्योंकि उक्त गुणस्थानोंमें सदा ही जीव पाये जाते हैं। एक जीवकी अपेक्षा उक्त गुणस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। वह इस प्रकार है-एक असंयत सम्यग्दृष्टि संयमा-संयमको प्राप्त हुआ और एक अन्तर्मुहूर्त तक संयमासंयमी रहकर पुनः असंयत सम्यग्दृष्टी हो गया। एक संयतासंयत मिथ्यादृष्टि हो गया या असंयत सम्यग्दृष्टी अथवा संयमी हो गया और एक अन्तर्मुहूर्त तक वहाँ रहकर पुनः संयतासंयत हो गया। इसी तरह एक प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत हो गया और एक अप्रमत्तसंयत उपशम श्रेणीपर चढ़कर पुनः लौटा और अप्रमत्तसंयत हो गया। इसी तरह प्रत्येक उक्त गुणस्थानका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त होता है तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध-पुद्गल परावर्तन है। सो अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको सम्यक्त्व उत्पन्न कराकर उस गुणस्थानमें भेजना चाहिये और वहाँसे च्युत कराकर पुनः मिथ्यात्वमें लाकर कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन काल तक भ्रमण कराकर, पुनः सम्यक्त्व उत्पन्न कराकर उस गुणस्थानमें ले जाना चाहिये। इस तरह करनेसे उत्कृष्ट अन्तरकाल निकलता है।

---

४२५. षट्खण्डागम, पु० ५, पृ० १४-१५।

४२७. प्र०—उपशम श्रेणीके चारों गुणस्थानोंका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है। जो इस प्रकार है—बहुतसे जीव अपूर्वकरण गुणस्थानमें गये और उसका काल समाप्त होनेपर कुछ ऊपर चढ़ गये, कुछ नीचे गिर गये और एक समय तक अपूर्वकरणमें कोई भी नहीं रहा। उसके बाद दूसरे समयमें सातवेंसे चढ़कर और नौवेंसे गिरकर अनेक जीव अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती हो गये। इस प्रकार एक समय जघन्य अन्तर हुआ। इसी तरह शेष तीन गुणस्थानोंका भी अन्तर जानना चाहिये। उपशम श्रेणीके चारों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्ष पृथक्त्व है, क्योंकि अधिकसे अधिक वर्ष पृथक्त्व तक कोई जीव उपशामक श्रेणीके गुणस्थानोंमेंसे किसी गुणस्थानमें नहीं रह सकता। चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि एक अपूर्वकरण उपशामक जीव ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ़कर और वहाँसे गिरकर पुनः अपूर्वकरण उपशामक हो गया। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल जघन्य अन्तर हुआ, क्योंकि अनिवृत्तिकरणसे लगाकर पुनः अपूर्वकरण उपशामक होनेके पूर्व जो नौवें, दसवें, ग्यारहवें और पुनः ग्यारहवेंसे दसवें और नौवें गुणस्थानमें आना होता है सो इन पाँचों ही गुणस्थानोंका काल एकत्र करनेपर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है। इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंका भी एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल समझ लेना चाहिये। चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है। सो एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको सम्यक्त्व उत्पन्न करके फिर संयमी बनाकर फिर उपशम श्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत बनकर उपशम श्रेणीपर चढ़ा और वहाँसे गिरकर मिथ्यात्वमें जाकर कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन काल तक भ्रमण करके पुनः सम्यग्दृष्टि हो, संयम धारण करके उपशम श्रेणीपर चढ़ा। इस तरह करनेसे उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन होता है।

४२८. प्र०—चारों क्षपक और अयोगकेवली गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छै मास है। क्योंकि अधिकसे अधिक एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपक एक ही समयमें सबके सब अनिवृत्तिकरण क्षपक हो गये और एक समयके लिए एक भी जीव अपूर्वकरण क्षपक नहीं रहा। दूसरे समयमें पुनः बहुतसे जीव अपूर्वकरण क्षपक हो गये। इस तरह जघन्य अन्तर एक समय होता है।

इसी तरह एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपकोमेंसे सबके सब एक साथ अनिवृत्तिकरण क्षपक हो गये और छै मास तक कोई भी जीव क्षपक अपूर्वकरण नहीं हुआ। अतः उत्कृष्ट अन्तर छै मास होता है। इसी तरह शेष गुणस्थानोंका भी जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर जान लेना। एक जीवकी अपेक्षा उक्त चारों क्षपकोंका और अयोगकेवली गुणस्थानका अन्तर नहीं है क्योंकि क्षपक श्रेणीवाले जीवोंका पतन नहीं होता।

४२९. प्र०—सयोगकेवली गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवों तथा एक जीवकी अपेक्षा भी सयोगकेवली गुणस्थानका अन्तर नहीं है; क्योंकि सयोग केवलियोंका कभी अभाव नहीं होता तथा सयोगकेवलीसे अयोगकेवली हुए जीव पुनः सयोगकेवली नहीं होते।

४३०. प्र०—मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कौन-सा भाव है ?

उ०—मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण मिथ्यादृष्टि गुणस्थान औदयिक भाव है क्योंकि जो उदयसे हो उसे औदयिक कहते हैं।

४३१. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टि कौन-सा भाव है ?

उ०—आदिके चार गुणस्थानोंमें जो भाव बतलाये गये हैं वह दर्शन मोहनीयकी अपेक्षासे बतलाये गये हैं। इसलिये दर्शन मोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमसे न होनेके कारण सासादन सम्यक्त्व पारिणामिक भाव है, क्योंकि जो भाव किसी कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमसे नहीं होता उसे पारिणामिक कहते हैं।

४३२. प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टि कौन-सा भाव है ?

उ०—सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय होनेपर श्रद्धान-अश्रद्धान रूप जो मिला हुआ जीव भाव होता है उसमें जो श्रद्धानका अंश है वह सम्यक्त्वका हिस्सा है, उसे सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय नष्ट नहीं करता। इसलिये सम्यग्मिथ्यात्व भाव क्षायोपशमिक है।

४३३. प्र०—असंयत सम्यग्दृष्टि कौन-सा भाव है ?

उ०—दर्शन मोहनीयकी उपशमसे उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, इसलिये असंयत सम्यग्दृष्टि औपशमिक भाव है। दर्शन मोहनीयके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है, इसलिये असंयत सम्यग्दृष्टि क्षायिक भाव है। सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्द्धकोंके उदयके साथ रहनेवाला सम्यक्त्व क्षायोपशमिक कहलाता है। इसलिये असंयत सम्यग्दृष्टि क्षायोपशमिक भाव है। इस तरह असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें तीन भाव होते हैं।

४३४. प्र०—संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत कौन-से भाव हैं ?

उ०—चारित्र मोहनीय कर्मके उदयका क्षयोपशम होनेपर संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत भाव उत्पन्न होते हैं। इसलिये ये तीनों भाव क्षायोपशमिक हैं।

४३५. प्र०—अपूर्वकरण आदि चारों उपशम गुणस्थान कौन-से भाव हैं ?

उ०—इनमें चारित्र मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंका उपशम होता है, इसलिये चारों गुणस्थान औपशमिक भावरूप हैं।

४३६. प्र०—चारों क्षपक, सयोगकेवली और अयोगकेवली कौन-से भाव हैं ?

उ०—कर्मोंको क्षय करनेके कारण और कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेके कारण चारों क्षपक वगैरह क्षायिक भावरूप हैं।

●

१०

४३७. प्र०—कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो पुद्गल स्कन्ध जीवके राग, द्वेष आदि परिणामोंके निमित्तसे कर्मरूपसे परिणत होकर जीवके साथ बन्धको प्राप्त होता है उसको कर्म कहते हैं।

४३८. प्र०—कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—आठ भेद हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

४३९. प्र०—ज्ञानावरण कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो जीवके ज्ञान गुणको ढाँकता है उसको ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

४४०. प्र०—दर्शनावरण कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो जीवके दर्शन गुणको ढाँकता है उसको दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

४४१. प्र०—वेदनीय कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो जीवके सुख और दुःखके अनुभवनका कारण है, उसको वेदनीय कर्म कहते हैं।

४४२. प्र०—मोहनीय कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो जीवको मोहित करता है वह मोहनीय कर्म है।

४४३. प्र०—आयु कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके निमित्तसे जीव नारक आदि भवोंमें जाता है तथा उसमें अमुक समय तक रुका रहता है, वह आयु कर्म है।

४४४. प्र०—नाम कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो शरीर आकार आदि नाना प्रकारकी रचना करता है, वह नाम-कर्म है।

४४५. प्र०— गोत्र कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो जीवको उच्च अथवा नीच कुल में उत्पन्न करता है, वह गोत्र कर्म कहा जाता है।

४४६. प्र०—अन्तराय कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो दान, लाभ, भोग, उपभोग आदि में विघ्न करनेमें समर्थ है, उसको अन्तराय कर्म कहते हैं।

४४७. प्र०—ज्ञानावरण कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—पाँच भेद हैं—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण।

४४८. प्र०—दर्शनावरण कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—नौ भेद हैं—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शना-वरण।

४४९. प्र०—निद्रानिद्रा किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे जीव वृक्षकी चोटीपर भी गाढ़ निद्रामें सोता है, उसे निद्रानिद्रा कहते हैं।

४५०. प्र०—प्रचलाप्रचला किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे जीव बैठा या खड़ा-खड़ा सो जाता है, सोते हुए मुँहसे लार गिरती है, शरीर कांपता है, उसे प्रचलाप्रचला कहते हैं।

४५१. प्र०—स्त्यानगृद्धि किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे उठाये जानेपर भी प्राणी पुनः सो जाता है,

सोते हुए भी कार्य कर डालता है, बड़बड़ाता है और दांत किटकिटाता है उसे स्त्यानगृद्धि कहते हैं।

४५२. प्र०—निद्रा किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे जीव थोड़ा सोता है, उठाये जानेपर जल्दी उठ बैठता है, और थोड़ा-सा भी शब्द होनेसे जल्दी सचेत हो जाता है, उसे निद्रा कहते हैं।

४५३. प्र०—प्रचला किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे आंखें ऐसी रहती हैं, मानों उनमें रेत भरा है, सिर भारी रहता है और नेत्र बार-बार बन्द होते और खुलते हैं उसे प्रचला कहते हैं।

४५४. प्र०—वेदनीय कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—सातावेदनीय और असातावेदनीय।

४५५. प्र०—मोहनीय कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय।

४५६. प्र०—दर्शन मोहनीय किसको कहते हैं ?

उ०—देव, शास्त्र और गुरुमें रुचि अथवा श्रद्धा होनेको दर्शन या सम्यग्-दर्शन कहते हैं। उसको जो मोहित करता है अर्थात् विपरीत कर देता है, उसको दर्शन मोहनीय कर्म कहते हैं। सारांश यह है कि जिस कर्मके उदयसे कुदेवमें देव बुद्धि, कुशास्त्रमें शास्त्र बुद्धि और कुगुरुमें गुरुबुद्धि होती है, अथवा देव, गुरु, शास्त्रमें अस्थिर श्रद्धान रहता है, अथवा देव-कुदेव, शास्त्र-कुशास्त्र, गुरु-कुगुरु दोनोंमें श्रद्धा होती है, वह दर्शन मोहनीय है।

४५७. प्र०—दर्शन मोहनीयके कितने भेद हैं ?

उ०—बन्धकी अपेक्षा दर्शन मोहनीय कर्म एक प्रकारका है किन्तु सत्त्वकी अपेक्षा उसके तीन भेद हैं—सम्यक्त्व, सम्यक्-मिथ्यात्व और मिथ्यात्व। क्योंकि जैसे चक्कीमें दले गये कोदोंके कोदों, चावल और कन इस प्रकार तीन विभाग हो जाते हैं वैसे ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व होनेके समय अपूर्वकरण आदि परिणामोंके द्वारा दले गये दर्शन मोहनीय कर्मके तीन भेद हो जाते हैं।

४५८. प्र०—सम्यक्त्व प्रकृति किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे देव, शास्त्र वगैरहकी श्रद्धामें शिथिलता आती है, वह सम्यक्त्व प्रकृति है।

४५९. प्र०—सम्यक्त्व प्रकृतिका 'सम्यक्त्व' यह नाम क्यों है ?

उ०—इसका उदय सम्यग्दर्शनका सहचारी है, इसलिये इसे उपचारसे 'सम्यक्त्व' कहते हैं।

४६०. प्र०—सम्यक् मिथ्यात्व किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके उदयसे एक साथ देव-कुदेव, शास्त्र-कुशास्त्र और गुरु-कुगुरु में श्रद्धा होती है, वह सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति है।

४६१. प्र०—मिथ्यात्वकर्म किसे कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे देव, शास्त्र, गुरुमें अश्रद्धा होती है वह मिथ्यात्वकर्म है।

४६२. प्र०—चारित्र मोहनीय कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—पापके कार्योंका त्यागकर देनेको चारित्र कहते हैं। उस चारित्रको जो मोहित करता है अर्थात् ढांकता है, उसे चारित्र मोहनीय कर्म कहते हैं।

४६३. प्र०—चारित्र मोहनीयके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—कषाय वेदनीय और नोकषाय वेदनीय। कषाय वेदनीयके सोलह भेद हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, माना, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ तथा नोकषाय वेदनीयके नौ भेद हैं—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा।

४६४. प्र०—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ किसको कहते हैं ?

उ०—अनन्त भवोंको बांधना हो जिसका स्वभाव है ऐसे क्रोध, मान, माया, लोभको अनन्तानुबन्धी क्रोध मान, माया, लोभ कहते हैं। सारांश यह है कि इन कषायोंका संस्कार अनन्त भवों तक माना गया है। ये चारों ही कषाय सम्यक्त्व और चारित्र दोनोंको घातती हैं।

४६५. प्र०—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ किसको कहते हैं ?

उ०—अप्रत्याख्यान संयमासंयम या देश चारित्रको कहते हैं। उसको जो आवरण करता है उसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं।

४६६. प्र०—प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ किसको कहते हैं ?

उ०—प्रत्याख्यान कहते हैं संयम अथवा महाव्रतको। उसको जो आवरण करते हैं वे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ कहलाते हैं।

४६७. प्र०—संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ किसको कहते हैं ?

उ०—जो कषाय चारित्रका घात तो नहीं करती किन्तु यथाख्यात चारित्र-को उत्पन्न नहीं होने देती उसको संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं।

४६८. प्र०—नोकषाय किसको कहते हैं ?

उ०—ईषत् कषायको नोकषाय कहते हैं।

४६९. प्र०—नोकषायोंका क्या स्वरूप है ?

उ०—जिसके उदयसे पुरुषकी आकांक्षा उत्पन्न होती है उसको स्त्रीवेद कहते हैं। जिसके उदयसे स्त्रीके प्रति आकांक्षा उत्पन्न होती है उसको पुरुष-वेद कहते हैं और जिसके उदयसे स्त्री और पुरुष दोनोंके प्रति आकांक्षा हो वह नपुंसकवेद है। जिसके उदयसे जीवमें हास्य निमित्तक राग उत्पन्न होता है उस कर्मस्कन्धको हास्य कहते हैं। जिसके उदयसे जीवमें राग भाव उत्पन्न होता है उसको रति कहते हैं जिसके उदयसे जीवमें किसीके प्रति अरुचि उत्पन्न होती है उसको अरति कहते हैं। जिसके उदयसे जीवके शोक उत्पन्न होता है उसको शोक कहते हैं। जिसके उदयसे जीवके भय उत्पन्न होता है, उसको भय कहते हैं। जिसके उदयसे ग्लानि उत्पन्न होती है उसको जुगुप्सा कहते हैं। ये सब नोकषाय हैं।

४७०. प्र०—आयु कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—चार भेद हैं—नरकायु, तिर्यश्चायु, मनुष्यायु और देवायु। जिसके उदयसे जीवको नारक भवमें ठहरना पड़े, उसे नरकायु कहते हैं। जिसके उदयसे जीवको तिर्यश्च भवमें ठहरना पड़े, उसे तिर्यश्चायु कहते हैं। इसी प्रकार मनुष्यायु और देवायुका स्वरूप जानना।

४७१. प्र०—नाम कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—तिरानबे—चार गतिनाम (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव), पाँच जाति नाम (एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय), पाँच शरीर नाम (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण), पाँच शरीर बन्धन नाम (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण), पाँच शरीर संघात नाम (औदारिक, वैक्रियिक वगैरह), छै शरीरसंस्थान नाम (सम-चतुरस्र शरीर संस्थान, न्यग्रोध परिमण्डल शरीर संस्थान, स्वाति शरीर संस्थान, कुब्ज शरीर संस्थान, वामन शरीर संस्थान, हुण्डक शरीर संस्थान नाम), तीन शरीर अंगोपांग नाम (औदारिक शरीर अंगोपांग नाम, वैक्रि-यिक शरीर अंगोपांग नाम, आहारक शरीर अंगोपांग नाम), छै शरीर संह-नन नाम (वज्रऋषभ नाराच शरीर संहनन, वज्र नाराच शरीर संहनन, नाराच शरीर संहनन, अर्धनाराच शरीर संहनन, कीलक शरीर संहनन और

असम्प्राप्तासृपाटिका शरीर संहनन), पाँच वर्णनाम (कृष्ण, नील, रुधिर, पीत, शुक्ल वर्णनाम), दो गंध नाम (सुगन्ध, दुर्गन्ध), पांच रस नाम (तिक्त, कटुक, कसैला, खट्टा, मीठा नाम), आठ स्पर्श नाम (कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, सूक्ष्म, शीत और उष्ण नामकर्म), चार आनुपूर्वी नाम (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव), एक अगुरु लघु नाम, एक उपघात नाम, एक परघात नाम, एक उच्छ्वास नाम, एक आताप नाम, एक उद्योत नाम, दो विहायोगति नाम (प्रशस्त और अप्रशस्त), एक त्रस नाम, एक स्थावर नाम, एक बादर नाम, एक सूक्ष्म नाम, एक पर्याप्त नाम, एक अपर्याप्त नाम, एक प्रत्येक शरीर नाम, एक साधारण शरीर नाम, एक स्थिर नाम, एक अस्थिर नाम, एक शुभ नाम, एक अशुभ नाम, एक सुभग नाम, एक दुर्भग नाम, एक सुस्वर नाम, एक दुस्वर नाम, एक आदेय नाम, एक अनादेय नाम एक यशःकीर्ति नाम, एक अयशःकीर्ति नाम, एक निर्माण नाम और एक तीर्थङ्कर नाम।

४७२. प्र०—**गति नामकर्म किसको कहते हैं ?**

उ०—आयु कर्मके उदयसे जिस भावमें अवस्थित होनेपर शरीर आदि कर्म उदयको प्राप्त होते हैं, वह भाव जिस कर्मके उदयसे होता है उसको गति नामकर्म कहते हैं। उसके चार भेद हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवोंके नारक भाव होता है वह नरक गति कर्म है। इसी प्रकार शेष भेदोंका भी अर्थ जानना।

४७३ प्र०—**जाति नामकर्म किसको कहते हैं ?**

उ०—जीवोंके सदृश परिणामको जाति कहते हैं। अतः जिस कर्मके उदयसे जीवोंमें अत्यन्त सदृशता उत्पन्न होती है उसको जाति नामकर्म कहा जाता है। उसके पाँच भेद हैं। जिस कर्मके उदयसे एकेन्द्रिय जीवोंकी एकेन्द्रिय जीवोंके साथ एकेन्द्रिय भावसे सदृशता होती है, वह एकेन्द्रिय जाति नामकर्म है। उसके भी अनेक भेद हैं। इसी प्रकार दोइन्द्रिय जाति नाम आदि के विषयमें भी जानना।

४७४. प्र०—**शरीर नामकर्म किसको कहते हैं ?**

उ०—जिस कर्मके उदयसे आहार वर्गणाके पुद्गल स्कन्ध तथा तैजस और कार्मण वर्गणाके पुद्गल स्कन्ध शरीर योग्य परिणामोंके द्वारा परिणत होते हुए जीवके साथ सम्बद्ध होते हैं, उसको शरीर नामकर्म कहते हैं। उसके पांच भेद हैं। जिस कर्मके उदयसे आहार वर्गणाके पुद्गल स्कन्ध औदारिक शरीर रूपसे परिणत होते हैं उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे आहार वर्गणाके पुद्गल स्कन्ध वैक्रियिक शरीर रूपसे परि-

णत होते हैं उसे वैक्रियिक शरीर नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार शेष भेदों का भी स्वरूप जानना।

४७५. प्र०—शरीर बन्धन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके उदयसे शरीरके लिये आये हुए पुद्गल स्कन्धोंका परस्पर बन्ध होता है उसको शरीर बन्धन नामकर्म कहते हैं।

४७६. प्र०—शरीर संघात नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके उदयसे शरीर सम्बन्धी पुद्गल स्कन्धोंका छिद्र रहित संश्लेष होता है उसको शरीर संघात नामकर्म कहते हैं।

४७७. प्र०—शरीर संस्थान नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके उदयसे शरीरका आकार बनता है वह शरीर संस्थान नामकर्म है।

४७८. प्र०—समचतुरस्र संस्थान नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—समान चतुरस्र अर्थात् ऊपर, नीचे और मध्यमें समभागको समचतुरस्र कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवोंके समचतुरस्र संस्थान होता है उसको समचतुरस्र संस्थान नामकर्म कहते हैं।

४७९. प्र०—न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—न्यग्रोध बड़के वृक्षको कहते हैं। उसके परिमण्डलके समान परिमण्डल जिस शरीरका होना है उसे न्यग्रोध परिमण्डल कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार न्यग्रोध परिमण्डल रूप होता है उसे न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान नामकर्म कहते हैं।

४८०. प्र०—स्वाति संस्थान नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—स्वाती नाम वामीका है। जिस कर्मके उदयमे शरीरका आकार वामीके समान हो अर्थात् नाभिसे नीचे विशाल और ऊपर हीन हो उसे स्वाती संस्थान नामकर्म कहते हैं।

४८१. प्र०—कुब्जक संस्थान नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—कुबड़े शरीरको कुब्जक कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे कुबड़ा शरीर हो उसे कुब्जक संस्थान नामकर्म कहते हैं।

४८२. प्र०—वामन संस्थान नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—बौने शरीरको वामन कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे बौना शरीर हो वह वामन संस्थान नामकर्म है।

४८३. प्र०—हुण्डक संस्थान नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—विषम आकारको हुण्ड कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार पूर्वोक्त पांच आकारोंसे भिन्न एक विचित्र ही प्रकारका हो उसे हुण्डक संस्थान नामकर्म कहते हैं।

४८४. प्र०—शरीर अंगोपांग नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे शरीरके अंग और उपांगोंकी रचना होती है। उसके तीन भेद हैं—जिस कर्मके उदयसे औदारिक शरीरके अंग उपांग उत्पन्न हों वह औदारिक शरीर अंगोपांग नामकर्म है। इस प्रकार शेष दो का भी अर्थ कहना चाहिये।

४८५. प्र०—शरीरमें अंग उपांग कौनसे हैं ?

उ०—शरीरमें दो पैर, दो हाथ, एक नितम्ब, पीठ, हृदय और मस्तक ये आठ अंग होते हैं। इनके सिवाय अन्य उपांग होते हैं—जैसे ललाट, भौं, कान, नाक, आँख, तालु, जीभ वगैरह।

४८६. प्र०—संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे शरीरमें हड्डी और उसकी सन्धियोंकी रचना हो।

४८७. प्र०—वज्रऋषभ नाराच शरीर संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—हड्डियोंके संचयको संहनन और वेष्टनको ऋषभ कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे वज्रमय हड्डियाँ वज्रमय वेष्टनसे वेष्टित और वज्रमय नाराच से कीलित होती हैं।

४८८. प्र०—वज्रनाराच संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे पूर्वोक्त अस्थिबन्धन ही वज्रमय वेष्टनसे रहित हो।

४८९. प्र०—नाराच संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे नाराच अर्थात् कीलें सहित हाड़ हों किन्तु वज्रमय न हों।

४९०. प्र०—अर्धनाराच संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे हाड़ोंकी सन्धियाँ नाराचसे आधी बिंधी हुई हों।

४९१. प्र०—कीलक संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे हड्डियाँ परस्परमें कीलित हों, वह कीलक संहनन नामकर्म है।

४९२. प्र०—असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जुदे-जुदे हाड़ शिराओंसे बँधे हुए हों।

४९३. प्र०—वर्ण नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें अपनी जातिके अनुसार नियत काले-पीले आदि वर्णको उत्पत्ति हो।

४९४. प्र०—गन्ध नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें अपनी जातिके अनुसार नियत गन्ध उत्पन्न होती है।

४९५. प्र०—रस नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें अपनी जातिके अनुसार नियत तिक्त आदि रस उत्पन्न हों।

४९६. प्र०—स्पर्श नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें अपनी जातिके अनुसार नियत स्पर्श उत्पन्न होता है।

४९७. प्र०—आनुपूर्वी नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जन्मसे पहले और मरणके पीछे बीचके एक, दो और तीन समयमें अर्थात् विग्रह गतिमें वर्तमान जीवके प्रदेशोंका आकार, मरणसे पहलेके शरीरके आकार होता है।

४९८. प्र०—संस्थान नामकर्म और आनुपूर्वी नामकर्ममें क्या अन्तर है ?

उ०—संस्थान नामकर्मका उदय शरीर ग्रहणके प्रथम समयसे होता है और आनुपूर्वीका उदय विग्रह गतिमें होता है। आनुपूर्वीके उदयसे हो जीव इच्छित गतिमें जाता है। विग्रह गतिमें आकार विशेष बनाये रखना और इच्छित गतिमें गमन कराना ये दोनों ही आनुपूर्वीके कार्य हैं।

४९९. प्र०— अगुरु लघु नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर न तो लोहेके गोलेके समान भारी हो और न आककी रूईकी तरह हल्का हो।

५००. प्र०—उपघात नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवको पीड़ा देनेवाले अवयव हों, जैसे—बारह सींगेके सींग।

५०१. प्र०—परघात नामकर्म किसको कहते हैं ?

---

४९८. षट्खण्डागम, पु० ६, पृ० ५६-५७।

उ०—जिस कर्मके उदयसे परका घात करनेवाले अवयव हों। जैसे—साँप को दाढ़में विष, बिच्छूके डंक, सिंहके नख, दन्त आदि।

५०२. प्र०—उच्छ्वास नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जोव उच्छ्वास और निःश्वास लेनेमें समर्थ होता है।

५०३. प्र०—आताप नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जोवके शरीरमें आताप होता है। जैसे-पृथिवो-कायिक जोवोंके शरोर रूप सूर्य मण्डलमें आताप पाया जाता है।

५०४. प्र०—उद्योत नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें उद्योत उत्पन्न होता है। जैसे—चन्द्र खद्योत वगैरहके शरीरमें उद्योत पाया जाता है।

५०५. प्र०—विहायोगति नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—विहायस् नाम आकाशका है। जिस कर्मके उदयसे जोवका आकाश में गमन हो उसको विहायोगति नामकर्म कहते हैं।

५०६. प्र०—तिर्यञ्च और मनुष्योंका भूमिपर गमन किस कर्मके उदयसे होता है ?

उ०—विहायोगति नामकर्मके उदयसे।

५०७. प्र०—त्रस नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे दोइन्द्रिय आदि पर्याय हो।

५०८. प्र०—स्थावर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव स्थावर पर्यायको प्राप्त हो।

५०९. प्र०—बादर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जोव बादरकाय वालोंमें उत्पन्न हो।

५१०. प्र०—सूक्ष्म नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जोव सूक्ष्मताको प्राप्त हो।

५११. प्र०—पर्याप्त नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जोव पर्याप्त होता है।

५१२. प्र०—अपर्याप्त नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जोव पर्याप्तियोंको समाप्त करनेमें समर्थ नहीं होता।

५१३. प्र०—प्रत्येक शरीर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जोव प्रत्येक शरोर होता है, अर्थात् एक शरीरमें एक ही जोव पाया जाता है।

५१४. प्र०—साधारण शरीर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव साधारण शरीर वाला होता है।

५१५. प्र०—स्थिर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे रस, रुधिर आदि धातुएँ स्थिर हों, उनका विनाश न हो।

५१६. प्र०—अस्थिर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे रस, रुधिर आदि धातुएँ अस्थिर हों।

५१७. प्र०—शुभ नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे अंग और उपांग रमणीय होते हैं।

५१८. प्र०—अशुभ नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे अंग और उपांग सुन्दर न हों।

५१९. प्र०—सुभग नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—सौभाग्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मको सुभग नामकर्म कहते हैं।

५२०. प्र०—दुर्भग नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—दुर्भाग्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मको दुर्भग नामकर्म कहते हैं।

५२१. प्र०—सुस्वर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवोंका मधुर स्वर होता है।

५२२. प्र०—दुस्वर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवोंके बुरा स्वर होता है।

५२३. प्र०—आदेय नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव आदेय होता है, अर्थात् बहुमान्य होता है।

५२४. प्र०—अनादेय नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव अनादरणीय होता है।

५२५. प्र०—यशःकीर्ति नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०— यश नाम गुण का है। उसके प्रकट करनेको कीर्ति कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे लोगोंके द्वारा विद्यमान अथवा अविद्यमान गुणोंको भी प्रकट किया जाता है, वह यशःकीर्ति नामकर्म है।

५२६. प्र०—अयशःकीर्ति नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे लोगोंके द्वारा विद्यमान अथवा अविद्यमान दुर्गुणोंको प्रकट किया जाता है उसको अयशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

५२७. प्र०—निर्माण नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—नियत मानको निर्माण कहते हैं। उसके दो भेद हैं—प्रमाण निर्माण और स्थान निर्माण। जंघा, सिर, हाथ वगैरह अवयवोंके प्रमाणके नियामक

कर्मको प्रमाण निर्माण कर्म कहते हैं और कान, आँख, नाक आदि अंगोंका अपने-अपने स्थानपर नियामक जो कर्म हो उसको स्थान निर्माण नामकर्म कहते हैं।

५२८. प्र०—तीर्थङ्कर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जोव त्रिलोकमें पूज्य होता है।

५२९. प्र०—गोत्र कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—दो—उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

५३०. प्र०—अन्तरायकर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—पाँच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय। जिस कर्मके उदयसे दानमें, लाभमें, भोगमें, उपभोगमें और वीर्यमें विघ्न होता है उसे क्रमशः दानान्तराय, लाभान्तराय आदि कहते हैं।

●

११

५३१. प्र०—कर्मोंकी कितनी अवस्थाएँ होती हैं ?

उ०—कर्मों को दस अवस्थाएँ होती हैं—बन्ध, सत्ता, उदय, उदीरणा, उदयावली, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, निधत्ति और निकाचना। इन्हींको दस करण कहते हैं।

५३२. प्र०—बन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—नवीन कर्म पुद्गलोंके आत्माके साथ बंधनेको बन्ध कहते हैं।

५३३. प्र०—बन्धके कितने भेद हैं ?

उ०—बन्धके चार भेद हैं—प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध।

५३४. प्र०—प्रकृतिबन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—कर्म रूप होने योग्य पुद्गलोंका ज्ञानावरण आदि मूल प्रकृति रूप और उनके भेद उत्तर प्रकृति रूप परिणमन होनेका नाम प्रकृतिबन्ध है।

५३५. प्र०—प्रकृतिबन्धके कितने भेद हैं ?

उ०—प्रकृतिबन्धके दो भेद हैं-मूल प्रकृतिबन्ध और उत्तर प्रकृतिबन्ध, मूल प्रकृतिबन्धके ज्ञानावरण आदि आठ भेद हैं और उनके जितने प्रभेद हैं उतने हो उत्तर प्रकृतिबन्धके भेद हैं।

५३६. प्र०—प्रदेशबन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—प्रति समय एक जीवके जितने पुद्गल परमाणु कर्मरूप परिणमन करते हैं उनके प्रमाणको प्रदेशबन्ध कहते हैं।

५३७. प्र०—एक समयमें एक जीवके कितने कर्मपरमाणु बँधते हैं ?

उ०—प्रति समय एक जीवके एक समय प्रबद्धका बन्ध होता है।

५३८. प्र०—समयप्रबद्धका स्वरूप और उसका प्रमाण क्या है ?

उ०— अभव्यराशिसे अनन्तगुने और सिद्धराशिके अनन्तवें भाग परमाणुओंकी एक कार्मण वर्गणा होती है और उतनी ही कार्मण वर्गणाओंका एक समयप्रबद्ध होता है। प्रति समय एक जीवके इतने कर्मपरमाणु बँधते हैं इसीसे इसे समयप्रबद्ध कहते हैं। यह एक साधारण प्रमाण है। योगकी तीव्रता अथवा मन्दताके अनुसार समयप्रबद्धमें परमाणुओंका प्रमाण बढ़ता घटता रहता है।

५३९. प्र०—समयप्रबद्धके विभागका क्या क्रम है ?

उ०—एक समयमें ग्रहण किया गया समयप्रबद्ध यथायोग्य मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतिरूप परिणमन करता है। सबसे कम भाग आयु कर्मरूप परिणमन करता है, उससे अधिक भाग दो भागोंमें समान रूपसे विभाजित होकर नामकर्म और गोत्रकर्मरूप परिणमन करता है। उन दोनों कर्मोंके भागसे अधिक भाग तीन भागोंमें बराबर-बराबर विभाजित होकर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मरूप परिणमन करता है। इन तीनों कर्मोंको मिलने वाले भागसे भी अधिक भाग मोहनीय कर्मरूप परिणमन करता है और मोहनीयसे भी अधिक भाग वेदनीय कर्मको मिलता है। आयु, गोत्र और वेदनीयको छोड़कर शेष पाँच कर्मोंको जो भाग मिलता है वह उनकी उत्तर प्रकृतियोंमें यथायोग्य विभाजित हो जाता है।

५४०. प्र०—स्थितिबन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—कर्मरूप परिणत हुए स्कन्धोंमें आत्माके साथ ठहरनेकी मियादके बंधनेको स्थितिबन्ध कहते हैं।

५४१. प्र०—कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०— पाँचों ज्ञानावरण, नवों दर्शनावरण, पाँचों अन्तराय और वेदनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है और आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेंतीस सागर प्रमाण है।

५४२. प्र०—मोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—मिथ्यात्व कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। पुरुषवेद, हास्य और रतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दस कोड़ाकोड़ी सागर है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्साका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ी सागर है और स्त्रीवेदका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है।

५४३. प्र०—नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—मनुष्य गति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागर, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, समचतुरस्र संस्थान, वज्रऋषभ नाराच संहनन, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्तिका दस कोड़ाकोड़ी सागर, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक वैक्रियिक तैजस कार्मण शरीर, औदारिक और वैक्रियिक अंगोपांग, हुण्डक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरु लघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण कर्मका बीस कोड़ाकोड़ी सागर, दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रियजाति, वामन संस्थान कीलक संहनन, सूक्ष्म अपर्याप्त और साधारण नामकर्मका अठारह कोड़ाकोड़ी सागर, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थङ्कर नामका अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर, न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान और वज्रनाराच संहननका बारह कोड़ाकोड़ी सागर, स्वाति संस्थान और नाराच संहननका चौदह कोड़ाकोड़ी सागर, स्वाति संस्थान और अर्धनाराच संहननका सोलह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है।

५४४. प्र०—वेदनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—असाता वेदनीयका तीस कोड़ाकोड़ी सागर और साता वेदनीयका पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है।

५४५. प्र०—आयु कर्मके भेदोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—नरकायु और देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेंतीस सागर और तिर्यञ्चायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन पल्योपम होता है।

५४६. प्र०—गोत्रकर्मके भेदोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—उच्च गोत्रका दस कोड़ाकोड़ी सागर और नीच गोत्रका बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है।

५४७. प्र०—यह उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसके होता है ?

उ०—सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवके होता है।

५४८. प्र०—कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—पाँचों ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, मोहनीय, आयु और पाँचों अन्तरायोंका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त है। नाम और गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त प्रमाण है और वेदनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध बारह मुहूर्त प्रमाण है।

५४९. प्र०—यह जघन्य स्थितिबन्ध किसके होता है ?

उ०—मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध अनिवृत्ति बादर साम्पराय नामक नौवें गुणस्थानमें, आयु कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध कर्मभूमिया मनुष्य तिर्यञ्चोंमें और शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सूक्ष्म साम्पराय नामक दसवें गुणस्थानमें होता है।

५५०. प्र०—एक समयमें बंधे हुए सभी पुद्गल परमाणुओंकी स्थिति क्या समान होती है ?

उ०—एक सययमें जो स्थितिबन्ध होता है उसमें बन्ध समयसे लगाकर आबाधा कालपर्यन्त तो बन्धे हुए परमाणुओंका उदय नहीं होता। आबाधा काल बीतने पर प्रथम समयसे लेकर बन्धी हुई स्थितिके अन्त समय पर्यन्त प्रत्येक समयमें एक-एक निषेकका उदय होता है। अत: प्रथम निषेककी स्थिति एक समय अधिक आबाधाकाल मात्र होती है, दूसरे निषेककी स्थिति दो समय अधिक आबाधाकाल मात्र होती है, इस तरह क्रमसे एक-एक समय बढ़ते-बढ़ते अन्तके निषेकसे पहले निषेककी स्थिति एक समय कम स्थितिबन्ध प्रमाण है और अन्तिम निषेककी स्थिति सम्पूर्ण स्थितिबन्ध प्रमाण है। जैसे मोहनीय कर्मकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति बन्धी। उसमेंसे सात हजार वर्ष तो आबाधाकाल है। अत: प्रथम निषेककी स्थिति एक समय अधिक सात हजार वर्ष है। दूसरे आदि निषेकोंकी स्थिति क्रमसे एक-एक समय बढ़ते-बढ़ते अन्तिम निषेककी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर होती है।

५५१. प्र०—आबाधाकाल किसे कहते हैं ?

उ०—कर्मका बन्ध होनेके पश्चात् जबतक वह कर्म उदय अथवा उदीरणा अवस्थाको प्राप्त नहीं होता, उतने कालको आबाधाकाल कहते हैं।

५५२. प्र०—आबाधाकालका क्या नियम है ?

उ०—उदयकी अपेक्षा आयुकर्मके सिवाय शेष सात कर्मोंकी आबाधा एक कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिमें सौ वर्ष प्रमाण होती है। अतः जिस कर्मकी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बँधती है, उसका आबाधाकाल सात हजार वर्ष है। जिस कर्मकी स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है उसकी आबाधा चार हजार वर्ष है। जिसकी स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर है उसका आबाधाकाल तीन हजार वर्ष है। इसी तरह सब कर्मोंकी स्थितिमें आबाधाकाल जानना। जिस कर्मकी स्थिति अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर है उसका आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है।

५५३. प्र०—आयु कर्मकी आबाधाका क्या नियम है ?

उ०—आयु कर्मकी आबाधा अन्य कर्मोंकी तरह स्थितिबन्धके अनुसार नहीं होती। इसीसे आयुके स्थितिबन्धमें आबाधाकाल नहीं गिना जाता; क्योंकि आयुका आबाधाकाल पूर्व पर्यायमें ही बीत जाता है। अतः आयु कर्मके प्रथम निषेककी स्थिति एक समय, दूसरे निषेककी दो समय, इस तरह क्रमसे बढ़ते-बढ़ते अन्तिम निषेककी स्थिति सम्पूर्ण स्थितिबन्ध प्रमाण होती है।

५५४. प्र०—आयु कर्मका आबाधाकाल कितना है ?

उ०—आयु कर्मका बन्ध अन्य कर्मोंकी तरह सदा नहीं होता। देव और नारकियोंके छै महीने आयु शेष रहने पर और भोगभूमिया जीवोंके नौ महीना आयु शेष रहने पर उसके त्रिभागमें आयु कर्मका बन्ध होता है। कर्मभूमिया मनुष्य तिर्यञ्चोंके अपनी सम्पूर्ण आयुके त्रिभागमें आयु कर्मका बन्ध होता है। सो कर्मभूमिया जीवकी उत्कृष्ट आयु एक कोटी पूर्व होती है। अतः एक कोटी पूर्वका त्रिभाग आयु कर्मका उत्कृष्ट आबाधाकाल है। त्रिभागके द्वारा आठ अपकर्ष कालोंमें आयुकर्मका बन्ध होता है। किन्तु यदि किसी भी अपकर्ष कालमें आयु नहीं बँधती तो किन्हीं आचार्यके मतसे एक आवलीके असंख्यातवें भाग और किन्हीं आचार्यके मतसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुके अवशेष रहने पर उत्तर भवकी आयुका बन्ध होता है। अतः आयुकर्मका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त अथवा आवलीका असंख्यातवाँ भाग होता है।

५५५. प्र०—अपकर्षकाल किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान आयुको अपकृष्य अर्थात् घटा-घटाकर आगामी परभवकी आयु जिस कालमें बंधे उसे अपकर्ष काल कहते हैं। जैसे—किसी कर्मभूमिया मनुष्यकी आयु इक्यासी वर्ष है। उस आयुके दो भाग बीतने पर जब सत्ताईस

वर्षकी आयु शेष रहती है तो तीसरे भागके लगते ही प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त प्रथम अपकर्ष काल होता है। उसमें परभवकी आयुका बन्ध होता है। यदि न बँधे तो उसके भी दो भाग बीतने पर जब नौ वर्षकी आयु शेष रहती है तब अन्तर्मुहूर्तके लिये दूसरा अपकर्षकाल आता है। उसमें भी आयु न बँधे तो तीन वर्षकी आयु शेष रहने पर तीसरे अपकर्ष कालमें आयु बँधती है। उसमें भी न बँधे तो एक वर्ष आयु शेष रहने पर चौथे अपकर्ष कालमें आयु बँधती है। इस तरह भुज्यमान आयुका जितना प्रमाण हो उसके त्रिभाग-त्रिभागमें आठ अपकर्ष काल होते हैं। आयुबंधके योग्य परिणाम इन अपकर्ष कालोंमें ही होते हैं किन्तु ऐसा कोई नियम नहीं है कि इन अपकर्षों-में आयुका बंध होना ही चाहिये। बन्ध होना हो तो होता है, न होना हो तो नहीं होता।

५५६. प्र०—निषेक किसको कहते हैं ?

उ०—एक समयमें जितने कर्मपरमाणु उदयमें आयें उनके समूहको निषेक कहते हैं।

५५७. प्र०—अनुभागबन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—जैसे भाजन वगैरहके निमित्तसे पुष्प वगैरह मदिरा रूप हो जाते हैं, उसमें ऐसी शक्ति हो जाती है कि उसके पीनेसे पुरुषको थोड़ा या बहुत नशा हो आता है। वैसे ही रागादिके निमित्तसे जो पुद्गल कर्मरूप होते हैं उनमें ऐसी शक्ति होती है जिससे उदयकाल आनेपर वे जीवके ज्ञानादि गुणोंका थोड़ा या बहुत घात करते हैं। बन्ध होते समय कर्ममें ऐसी शक्तिके पड़नेका नाम ही अनुभागबंध है।

५५८. प्र०—अविभागी प्रतिच्छेद किसको कहते हैं ?

उ०—शक्तिके अविभागी अंशको अविभागी प्रतिच्छेद कहते हैं।

५५९. प्र०—वर्ग किसको कहते है ?

उ०—अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं। चूंकि प्रत्येक पर-माणुमें अनेक अविभागी प्रतिच्छेद होते हैं इसलिये प्रत्येक परमाणु एक वर्ग है।

५६०. प्र०—जघन्य वर्ग किसको कहते हैं ?

उ०—थोड़े अनुभाग वाले परमाणुको जघन्य वर्ग कहते हैं।

५६१. प्र०—वर्गणा किसको कहते हैं ?

उ०—समान अविभागी प्रतिच्छेदोंसे युक्त वर्गोंके समूहको वर्गणा कहते हैं।

५६२. प्र०—जघन्य वर्गणा किसको कहते हैं ?

उ०—जघन्य वर्गोंके समूहको जघन्य वर्गणा कहते हैं।

५६३. प्र०—द्वितीय वर्गणा किसको कहते हैं ?

उ०—जघन्य वर्गसे एक अधिक अविभागी प्रतिच्छेदोंसे युक्त वर्गोंके समूहको द्वितीय वर्गणा कहते हैं।

५६४. प्र०—स्पर्द्धक किसको कहते हैं ?

उ०—उक्त प्रकारसे एक-एक अविभागी प्रतिच्छेद अधिक वर्गोंके समूह रूप वर्गणा जहाँ तक उपलब्ध हों, उन सब वर्गणाओंके समूहको स्पर्द्धक कहते हैं।

५६५. प्र०—द्वितीय स्पर्द्धक किसको कहते हैं ?

उ०—प्रथम स्पर्द्धकके ऊपर क्रमसे एक-एक अविभागी प्रतिच्छेद अधिक-वाले वर्गोंके समूह वर्गणा जब तक उपलब्ध हों, उन सब वर्गणाओंके समूहको द्वितीय स्पर्द्धक कहते हैं।

५६६. प्र०—गुणहानि किसको कहते हैं ?

उ०—स्पर्द्धकोंके समूहको गुणहानि कहते हैं।

५६७. प्र०—गुणहानि आयाम किसको कहते हैं ?

उ०—एक गुणहानिके समयोंके समूहको गुणहानि आयाम कहते हैं।

५६८. प्र०—नाना गुणहानि किसको कहते हैं ?

उ०—गुणहानिके प्रमाणको नाना गुणहानि कहते हैं।

५६९. प्र०—अन्योन्याभ्यस्तराशि किसको कहते हैं ?

उ०—नाना गुणहानि प्रमाण दुए रखकर उन्हें परस्परमें गुणनेसे जो प्रमाण होता है उसे अन्योन्याभ्यस्तराशि कहते हैं।

५७०. प्र०—स्थिति रचनाकी अपेक्षा निषेकोंमें द्रव्यका प्रमाण लानेकी विधि क्या है ?

उ०—जैसे, किसी जीवने एक समयमें तिरसठ सौ परमाणुओंके समूहरूप समयप्रबद्धका बंध किया और उसमें ४८ समयकी स्थिति पड़ी। गुणहानि ८, नानागुणहानि ६, अन्योन्याभ्यस्तराशि ६४ स्थापन करके सर्व द्रव्यको साधिक डेढ़ गुणहानिका भाग देने पर प्रथम निषेकका द्रव्य आता है। जैसे—तिरसठ सौको साधिक बारहका भाग देनेसे ५१२ आते हैं। प्रथम निषेकको दो गुणहानिका भाग देनेसे चयका प्रमाण आता है। जैसे ५१२ को १६ का भाग देनेसे ३२ आता है, यह चय है। सो द्वितीय आदि निषेकोंका द्रव्य एक-एक चय घटता जानना। जैसे ५१२, ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२, ३२०, २८८। इस तरह घटते-घटते जिस निषेकमें प्रथम निषेकसे आधा द्रव्य पाया जाये वहाँसे दूसरी गुणहानि प्रारम्भ होती है। जैसे—दूसरी गुणहानिके प्रथम

निषेकका द्रव्य २५६ है। यहाँ चयका प्रमाण प्रथम गुणहानिसे आधा है अर्थात् १६ है। सो यहाँ भी द्वितीय आदि निषेकोंका द्रव्य क्रमसे एक-एक चय घटता हुआ जानना। जैसे २५६, २४०, २२४, २०८, १९२, १७६, १६०, १४४। इस प्रकार प्रथम गुणहानिसे द्वितीय गुणहानिका द्रव्य और चयका प्रमाण जैसे आधा होता है वैसे ही तृतीय आदि गुणहानियोंमें अपनेसे पूर्व-पूर्वकी गुणहानियोंसे द्रव्य और चयका प्रमाण क्रमसे आधा-आधा होता जाता है। इस तरह नाना गुणहानि प्रमाण ६ गुण हानियोंमें निषेकोंके द्रव्यका प्रमाण लाना चाहिये। जैसे—तीसरी गुणहानिमें १२८, १२०, ११२, १०४, ९६, ८८, ८०, ७२। चौथी गुणहानिमें ६४, ६०, ५६, ५२, ४८, ४४, ४०, ३६। पांचवींमें ३२, ३०, २८, २६, २४, २२, २०, १८। छठींमें १६, १५, १४, १३, १२, ११, १०, ९।

५७१. प्र०—सत्त्व अथवा सत्ता किसको कहते हैं ?

उ०—अनेक समयोंमें बँधे हुए कर्मोंका विवक्षित कालमें जीवके अस्तित्व होनेका नाम सत्त्व है।

५७२. प्र०—सत्त्वके कितने भेद हैं ?

उ०—सत्त्व भी चार प्रकारका है—प्रकृति-सत्त्व, प्रदेश-सत्त्व, स्थिति-सत्त्व और अनुभाग-सत्त्व।

५७३. प्र०—प्रकृति सत्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—अनेक समयोंमें बंधी हुई ज्ञानावरण आदि मूल कर्मों और उनकी उत्तर प्रकृतियोंके अस्तित्वको प्रकृति सत्त्व कहते हैं।

५७४. प्र०—प्रदेश सत्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—उन प्रकृति रूप परिणमे पुद्गल परमाणुओके अस्तित्वको प्रदेश सत्त्व कहते हैं।

५७५. प्र०—एक जीवके अधिकसे अधिक कितना प्रदेश सत्त्व होता है ?

उ०—प्रत्येक संसारी जोव एक-एक समयमें एक-एक समयप्रबद्धका बंध करता है और उन समयप्रबद्धोंका एक-एक निषेक क्रमसे निर्जराको प्राप्त होता है। जिन समयप्रबद्धोंके सब निषेक खिर गये उनका तो अस्तित्व ही नहीं रहा। शेषमेंसे किसी समयप्रबद्धका एक निषेक शेष रहा, बाकी निषेक खिर गये, किसी समयप्रबद्धके दो निषेक शेष रहे, शेष निषेक खिर गये। इस क्रमसे जिस समयप्रबद्धका केवल एक ही निषेक खिरा, उसके बाकी सभी निषेक मौजूद हैं और जिसका एक भी निषेक नहीं खिरा उसके सभी निषेक मौजूद हैं। इस तरह बाकी बचे सभी परमाणुओंका प्रमाण कुछ कम डेढ़ गुण

हानिसे गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण जानना। इतना ही प्रदेश सत्त्व एक जीवके होता है।

५७६. प्र०—स्थितिसत्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—सत्तामें स्थित अनेक समयोंमें बंधी प्रकृतियोंकी स्थितिके सत्त्वको स्थितिसत्त्व कहते हैं। सो उन प्रकृतियोंके जिस समयप्रबद्धका एक निषेक ही सत्तामें स्थित है उसकी एक समय प्रमाण स्थिति सत्त्व है, जिसके दो निषेक सत्तामें स्थित हैं, उसका दो समय प्रमाण स्थितिसत्त्व है और जिस समय-प्रबद्धका एक भी निषेक नहीं गला उसके प्रथमादि निषेकोंका क्रमसे एक दो आदि समय अधिक आबाधाकाल मात्र स्थितिसत्त्व जानना और अन्तिम निषेकका सम्पूर्ण स्थितिबन्ध प्रमाण स्थितिसत्त्व जानना।

५७७. प्र०—अनुभाग सत्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—उन अनेक समयोंमें बंधो हुई प्रकृतियोंका जो अनुभाग सत्तामें स्थित है उसे अनुभाग सत्त्व कहते हैं।

५७८. प्र०—उदय किसको कहते हैं ?

उ०—स्थिति पूरी होने पर कर्मके फल देनेको उदय कहते हैं।

५७९. प्र०—उदयके कितने भेद हैं ?

उ०—चार भेद हैं—प्रकृति उदय, प्रदेश उदय, स्थिति उदय और अनुभाग उदय। मूल प्रकृति अथवा उत्तर प्रकृतिका उदय आना प्रकृति उदय है। उदय रूप प्रकृतिके परमाणुओंका फलोन्मुख होना प्रदेश उदय है, स्थिति-का उदय होना स्थिति उदय है और अनुभागका उदय होना अनुभाग उदय है।

५८०. प्र०—उदीरणा किसको कहते हैं ?

उ०—उदयावलीके बाहरके निषेकोंको उदयावलीके निषेकोंमें मिलाना अर्थात् जिस कर्मका उदयकाल नहीं आया उस कर्मको उदय कालमें ले आनेका नाम उदीरणा है।

५८१. प्र०—उदयावली किसको कहते हैं ?

उ०—वर्तमान समयसे लगाकर एक आवली मात्र कालमें उदय आने योग्य निषेकोंको उदयावली कहते हैं।

५८२. प्र०—उत्कर्षण किसको कहते हैं ?

उ०—स्थिति और अनुभागके बढ़नेको उत्कर्षण कहते हैं।

५८३. प्र०—स्थिति और अनुभागका उत्कर्षण किस प्रकार होता है ?

उ०—थोड़े समयमें उदय आने योग्य नीचेके निषेकोंके परमाणुओंको

बहुत कालमें उदय आनेके योग्य ऊपरके निषेकोंमें मिलाना स्थिति उत्कर्षण होता है तथा थोड़े अनुभाग वाले नीचेके स्पर्धकोंके परमाणुओंको बहुत अनुभागवाले ऊपरके स्पर्धकोंमें मिलानेसे अनुभाग उत्कर्षण होता है।

५८४. प्र०—अपकर्षण किसको कहते हैं ?

उ०—स्थिति और अनुभागके घटनेका नाम अपकर्षण है।

५८५. प्र०—स्थिति और अनुभागका अपकर्षण कैसे होता है ?

उ०—बहुत कालमें उदय आनेके योग्य ऊपरके निषेकोंके परमाणुओंको शीघ्र उदयमें आनेवाले नीचेके निषेकोंमें मिलानेसे स्थिति अपकर्षण होता है और बहुत अनुभाग वाले ऊपरके स्पर्धकोंके परमाणुओंको थोड़े अनुभाग वाले नीचेके स्पर्द्धकोंमें मिलानेसे अनुभाग अपकर्षण होता है।

५८६. प्र०—उत्कर्षण और अपकर्षणमें कितने परमाणु ऊपर नीचे मिलाये जाते हैं ?

उ०—विवक्षित सर्व परमाणुओंमें उत्कर्षण अथवा अपकर्षण भागहारका भाग देनेसे जो एक भाग मात्र परमाणु आते हैं उनको यथायोग्य ऊपर अथवा नीचेके निषेकोंमें मिलानेसे उत्कर्षण अथवा अपकर्षण होता है।

५८७. प्र०—संक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—एक प्रकृतिके परमाणुओंका सजातीय अन्य प्रकृति रूप होनेका नाम संक्रमण है। जैसे—विशुद्ध परिणामोंके निमित्तसे पहले बंधी हुई असाता वेदनीय प्रकृतिके परमाणुओंका सातावेदनीय रूप परिणमन होता है।

५८८. प्र०—संक्रमण करणका नियम क्या है ?

उ०—बन्ध दशामें ही संक्रमण होता है। मूल प्रकृतियोंमें संक्रमण नहीं होता अर्थात् ज्ञानावरण कर्मके परमाणु दर्शनावरण रूप नहीं हो सकते। उत्तर प्रकृतियोंमें भी दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीयमें परस्पर संक्रमण नहीं होता तथा एक आयु दूसरी आयु रूप नहीं हो सकती।

५८९. प्र०—संक्रमणके लिए उपयोगी पाँच भागहार कौनसे हैं ?

उ०—उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुण-संक्रमण, सर्व संक्रमण—ये पाँच भागहार हैं।

५९०. प्र०—उद्वेलन संक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—अधःप्रवृत्त आदि तीन करणोंके बिना ही उद्वेलन प्रकृतिके परमाणुओंमें उद्वेलन भागहारका भाग देने पर एक भाग मात्र परमाणु जहाँ अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते हैं उसे उद्वेलन संक्रमण कहते हैं।

५९१. प्र०—उद्वेलन प्रकृतियाँ कौन सी हैं ?

उ०—आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्र प्रकृति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, उच्च गोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी ये तेरह उद्वेलन प्रकृतियाँ हैं।

५९२. प्र०—उद्वेलन प्रकृतियोंकी उद्वेलना कौन करता है ?

उ०—शुरूकी चार प्रकृतियोंकी उद्वेलना तो चारों गतियोंके मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं। फिर छै प्रकृतियोंकी उद्वेलना एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव करते हैं। शेष तीन प्रकृतियोंकी उद्वेलना तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव करते हैं।

५९३. प्र०—विध्यातसंक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—मन्द विशुद्धि वाले जीवके जिनका बन्ध नहीं पाया जाता, उन विवक्षित प्रकृतियोंके परमाणुओंमें विध्यात भागहारका भाग देनेपर एक भाग मात्र परमाणु जहाँ अन्य प्रकृतिरूप परिणमन करते हैं उसे विध्यातसंक्रमण कहते हैं।

५९४. प्र०—अधःप्रवृत्तसंक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—बंधनेवाली प्रकृतियोंमें अधःप्रवृत्त भागहारका भाग देने पर एक भाग मात्र परमाणु जहाँ बंधको प्राप्त अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते हैं उसे अधःप्रवृत्तसंक्रमण कहते हैं।

५९५. प्र०—गुणसंक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—विवक्षित अशुभ प्रकृतियोंके परमाणुओंमें गुण संक्रमण भागहारका भाग देने पर जहाँ प्रति समय असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे परमाणु अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते हैं उसे गुणसंक्रमण कहते हैं।

५९६. प्र०—सर्वसंक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—प्रति समय विवक्षित प्रकृतिके परमाणु अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते-करते जहाँ अन्त समयमें अन्तके काण्डककी अन्तिम फाली रूप सभी परमाणु अन्य प्रकृतिरूप परिणमन करते हैं उसे सर्वसंक्रमण कहते हैं।

५९७. प्र०—भागहारोंका प्रमाण क्या है ?

उ०—सर्वसंक्रमण भागहारका प्रमाण तो एक है। उससे असंख्यात गुणा गुणसंक्रमण भागहारका प्रमाण है। उससे भी असंख्यात गुणा उत्कर्षण और अपकर्षण भागहारका प्रमाण है। उससे भी असंख्यातगुणा अधःप्रवृत्तसंक्रमण भागहारका प्रमाण है। उससे भी असंख्यातगुणा विध्यातसंक्रमण भागहारका

प्रमाण है और उससे भी असंख्यातगुणा उद्वेलनसंक्रमण भागहारका प्रमाण है।

५९८. प्र०—उपशम करण किसको कहते हैं ?

उ०—विवक्षित प्रकृतिके जो निषेक उदयावलीसे बाहर हैं, उनके परमाणुओंको उदयावलीमें आनेके अयोग्य करनेका नाम उपशम अथवा उपशान्त करण है।

५९९. प्र०—उपशमके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—एक अन्तरकरणरूप उपशम और दूसरा सदवस्थारूप उपशम।

६००. प्र०—अन्तरकरणरूप उपशम किसको कहते हैं ?

उ०—अन्तरकरणका स्वरूप पहले कहा है, अन्तरकरणके द्वारा आगामी कालमें उदय आने योग्य कर्म परमाणुओंको आगे-पीछे उदय आने योग्य करने का नाम अन्तरकरणरूप उपशम है।

६०१. प्र०—सदवस्थारूप उपशम किसको कहते हैं ?

उ०—आगामी कालमें उदय आने योग्य निषेकोंके सत्तामें रहनेका नाम सदवस्थारूप उपशम है।

६०२. प्र०—उपशम भाव और उपशान्त करणमें क्या अन्तर है ?

उ०—उपशम भाव तो मोहनीय कर्मका ही होता है किन्तु उपशान्तकरण सब प्रकृतियोंका होता है तथा उपशान्तकरण आठवें गुणस्थान पर्यन्त ही होता है किन्तु उपशम भाव ग्यारहवें गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है।

६०३. प्र०—निधत्तिकरण किसको कहते हैं ?

उ०—विवक्षित प्रकृतिके परमाणुओंका संक्रमण करनेके और उदयावलीमें आनेके योग्य न होना निधत्तिकरण है।

६०४ प्र०—निकाचितकरण किसको कहते हैं ?

उ०—विवक्षित प्रकृतिके परमाणुओंका संक्रमण करने अथवा उदयावलीमें आनेके अथवा उत्कर्षण अथवा अपकर्षण करनेके योग्य न होना निकाचितकरण है।

•

१२

६०५. प्र०—कर्मोंकी बन्धयोग्य प्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उ०—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, छब्बीस मोहनीय, चार आयु, सड़सठ नाम, दो गोत्र और पाँच अन्तराय—ये सब एक सौ बीस

प्रकृतियाँ बन्ध योग्य हैं, क्योंकि मोहनीय कर्मकी सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन दो प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, केवल उदय और सत्त्व होता है तथा नामकर्मको ९३ प्रकृतियोंमें से पाँच बन्धन और पाँच संघात चूंकि शरीर नामकर्मके अविनाभावी हैं इसलिये बन्ध और उदय अवस्थामें इन दसोंका अन्तर्भाव शरीर नामकर्ममें ही कर लिया जाता है। इसी तरह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शके २० भेदोंको उन्हींमें गर्भित करके बन्ध और उदय अवस्थामें केवल चारका ही ग्रहण किया जाता है। अतः २+१०+ १६=२८ के घटनेसे बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १२० हैं।

६०६. प्र०—कर्मोंकी उदययोग्य प्रकृतियाँ कितनी हैं?

उ०—५+९+२+२८+४+६७+२+५=१२२ प्रकृतियाँ उदय योग्य होती हैं।

६०७. प्र०—कर्मोंकी सत्त्वयोग्य प्रकृतियाँ कितनी हैं?

उ०—ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंकी क्रमसे ५+९+२+२८+४+९३ +२+५=१४८ प्रकृतियाँ सत्त्वयोग्य हैं।

६०८. प्र०—घातिया कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जो जीवके ज्ञानादिक गुणोंको घाते उसे घातिया कर्म कहते हैं।

६०९. प्र०—घातिया कर्मके कितने भेद हैं?

उ०—दो भेद हैं—सर्वघाती और देशघाती।

६१०. प्र०—सर्वघाती कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जो जीवके ज्ञानादिके गुणोंको पूरो तरहसे घाते उसे सर्वघाति कर्म कहते हैं।

६११. प्र०—देशघाति कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जो जीवके ज्ञानादि गुणोंको एक देश घाते उसे देशघाति कर्म कहते हैं।

६१२. प्र०—घातिया कर्म कौनसे हैं?

उ०—पाँच ज्ञानावरण, दो दर्शनावरण, अट्ठाइस मोहनीय और पाँच अन्तराय—ये सब घातिया कर्म हैं।

६१३. प्र०—सर्वघाती प्रकृतियाँ कितनी हैं?

उ०—इक्कीस हैं—ज्ञानावरणकी एक केवलज्ञानावरण, दर्शनावरणकी ६ (केवल दर्शनावरण और पाँचों निद्रा), मोहनीयकी १४ (अनन्तानुबन्धी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व)।

६१४. प्र०—देशघाती प्रकृतियाँ कितनी और कौनसी हैं ?

उ०—छब्बीस हैं—ज्ञानावरणकी ४ (मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण), दर्शनावरणकी ३ (चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण), मोहनीयकी १४ (संज्वलन ४, नोकषाय ६, सम्यक्त्व १) और अन्तराय की ५।

६१५. प्र०—अघातिकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो जीवके ज्ञानादि गुणोंको न घाते उसे अघाति कर्म कहते हैं।

६१६. प्र०—अघातिया कर्म कितने हैं ?

उ०—२ वेदनीय, ४ आयु, ९३ नाम और २ गोत्र, ये अघातिकर्म हैं।

६१७. प्र०—पुण्यकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके उदयमें जीवको इष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो।

६१८. प्र०—पापकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके उदयमें जीवको अनिष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो।

६१९. प्र०—पुण्यप्रकृतियाँ कितनी और कौन-सी हैं ?

उ०—सातावेदनीय, तीन आयु (तिर्यञ्च, मनुष्य और देव), उच्च गोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, तीन अंगोपांग, शुभवर्ण ५, शुभगंध २, शुभ रस ५, शुभस्पर्श ८, समचतुरस्र संस्थान, वज्रऋषभ नाराचसंहनन, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थङ्कर ये ६८ प्रकृतियां पुण्यरूप हैं।

६२०. प्र०—पापप्रकृतियाँ कितनी और कौन-सी हैं ?

उ०—घातिया कर्मोंकी ४७ प्रकृतियां, नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरक आयु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि ४ जातियां, शेष पांच संस्थान, शेष पांच संहनन, अशुभ वर्ण ५, अशुभ रस ५, अशुभ गन्ध २, अशुभ स्पर्श ८, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति—ये पाप प्रकृतियां हैं।

६२१. प्र०—पुद्गलविपाकी कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसका फल पुद्गलमें हो। जैसे—शरीर नामकर्मके उदयसे पुद्गल ही शरीररूप होकर परिणमन करता है।

६२२. प्र०—पुद्‌गलविपाकी प्रकृति कितनी और कौन-सी हैं ?

उ०—पांच शरीर, पांच बन्धन, पांच संघात, छै संस्थान, तीन अंगोपांग, छै संहनन, पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श, निर्माण, आताप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक, साधारण, अगुरुलघु, उपघात, परघात—ये बासठ प्रकृतियां पुद्‌गल विपाकी हैं।

६२३. प्र०—भवविपाकी कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसका फल मनुष्यादि भव रूप हो।

६२४. प्र०—भवविपाकी प्रकृतियाँ कौन-सी हैं ?

उ०—चारों आयुकर्म भवविपाकी हैं।

६२५. प्र०—क्षेत्रविपाकी कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके फलसे परलोकको गमन करते समय विग्रहगतिमें जीवका आकार पूर्व शरीरका-सा बना रहे।

६२६. प्र०—क्षेत्रविपाकी प्रकृतियाँ कौन-सी हैं ?

उ०—चारों आनुपूर्वी नामकर्म क्षेत्रविपाकी हैं।

६२७. प्र०—जीवविपाकी कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसका फल जीवमें हो।

६२८. प्र०—जीवविपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन-सी हैं ?

उ०—दो वेदनीय, दो गोत्र, घातिया कर्मोंकी ४७ प्रकृतियाँ तथा नामकर्मकी सत्ताईस (चार गति, पांच जाति, उच्छ्‌वास, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति और तीर्थङ्कर) ये अट्ठहत्तर प्रकृतियां जीवविपाकी हैं।

●

१२

६२९. प्र०—ज्ञानावरण कर्मके कितने बन्धस्थान हैं ?

उ०—ज्ञानावरण कर्मका एक ही बन्धस्थान है क्योंकि ज्ञानावरण कर्मकी पांचों प्रकृतियां दसवें गुणस्थान तक प्रत्येक जीवके बंधती हैं और उसके बाद पांचों ही नहीं बंधती।

६३०. प्र०—दर्शनावरण कर्मके कितने बन्धस्थान हैं ?

उ०—तीन—नौप्रकृतिक, छैप्रकृतिक और चारप्रकृतिक।

६३१. प्र०—दर्शनावरणकर्मके नौप्रकृतिक बन्धस्थानका स्वामी कौन है?

उ०—मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके दर्शनावरण कर्मकी नौ प्रकृतियां बंधती हैं। आगेके गुणस्थानोंमें निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धिका बन्ध नहीं होता।

६३२. प्र०—दर्शनावरणकर्मके छैप्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन है?

उ०—सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम भाग तक उक्त तीन निद्राओंके सिवाय शेष छै प्रकृतियोंका बन्ध होता है। आगे निद्रा और प्रचलाका बन्ध नहीं होता है।

१४

६३३. प्र०—व्युच्छित्ति किसको कहते हैं?

उ०—जिस गुणस्थानमें जिन कर्मप्रकृतियोंके बन्ध, उदय और सत्त्वकी व्युच्छित्ति कही हो उस गुणस्थान तक ही उन प्रकृतियोंका बन्ध, उदय अथवा सत्त्व पाया जाता है। आगेके किसी भी गुणस्थानमें उन प्रकृतियोंका बंध, उदय अथवा सत्व नहीं होता। इसीको व्युच्छिति (अभाव) कहते हैं।

६३४. प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंका बन्ध होता है?

उ०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीर्थङ्कर, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग इन तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। अत: आठों कर्मोंकी बन्ध योग्य एक सौ बीस प्रकृतियोंमें से तीन घटाने पर ११७ प्रकृतियां बन्ध योग्य हैं।

६३५. प्र०—तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध किसके होता है?

उ०—चौथे असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सातवें अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त ही केवली या श्रुतकेवलीके चरणोंके निकट तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ करते हैं।

६३६ प्र०—मिथ्यात्वगुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है?

उ०—मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसक वेद, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय जाति, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु, इन सोलह प्रकृतियोंके बन्धका कारण मिथ्यात्व ही है। अतः मिथ्यात्व गुणस्थानसे आगे इनका बन्ध नहीं होता।

६३७. प्र०—सासादन गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—पहले गुणस्थानमें जो ११७ का बन्ध होता है उनमेंसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें जिनकी व्युच्छित्ति होती है उन सोलह प्रकृतियोंको घटानेपर सासादन में १०१ प्रकृतियां बन्ध योग्य हैं।

६३८. प्र०—सासादन गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है ?

उ०—अनन्तानुबन्धी चार स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, न्यग्रोध परिमण्डल, स्वाति कुब्जक वामन ये चार संस्थान, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलक ये चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु उद्योत ये पच्चीस प्रकृतियां अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे बंधती हैं। अतः सासादन गुणस्थानसे आगे इनका बन्ध नहीं होता।

६३९. प्र०—तीसरे मिश्र गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—दूसरे गुणस्थानमें बन्ध योग्य प्रकृतियाँ १०१ हैं। उनमेंसे व्युच्छित्त हुई पच्चीस प्रकृतियोंको घटानेपर शेष ७६ बचती हैं। किन्तु इस गुणस्थानमें किसी भी आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। अतः पहले गुणस्थानमें नरकायु और दूसरे गुणस्थानमें तिर्यञ्चायुकी बन्धव्युच्छित्ति होनेसे शेष बची मनुष्यायु और देवायुको भी घटा देने पर तीसरे गुणस्थानमें बन्ध योग्य प्रकृतियाँ ७४ रहती हैं।

६४०. प्र०—मिश्र गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है ?

उ०—मिश्र गुणस्थानमें किसी भी प्रकृतिकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती।

६४१. प्र०—चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—तीसरे गुणस्थानमें ७४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। मनुष्यायु, देवायु और तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध बढ़ जानेसे चौथे गुणस्थानमें बन्ध योग्य प्रकृतियाँ ७७ रहती हैं।

६४२. प्र०—चौथे गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—अप्रत्याख्यानावरण कषाय ४, वज्रऋषभ-नाराचसंहनन, औदारिक शरीर; औदारिक अंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु ये दस प्रकृतियाँ अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयके निमित्तसे बंधती

६५६. प्र०—बारहवें और तेरहवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—एक सातावेदनीयका बन्ध होता है।

६५७. प्र०—ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियों-की बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—ग्यारहवें, बारहवेंमें एक भी प्रकृतिकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती। तेरहवें गुणस्थानमें बँधनेवाली एक सातावेदनीयकी व्युच्छित्ति होती है।

६५८. प्र०—चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—एक भी प्रकृतिका बन्ध नहीं होता।

६५९. प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यक् मिथ्यात्व, आहारकशरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थङ्कर प्रकृति—इन पाँच प्रकृतियोंका उदय इस गुणस्थानमें नहीं होता। अतः उदययोग्य १२२ प्रकृतियोंमेंसे पाँच घटानेपर ११७ का उदय होता है।

६६०. प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, जाति, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण—इन दस प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति होती है। यह महाकर्म प्रकृति प्राभृतका उपदेश है। चूर्णि सूत्रके कर्ता आचार्य यतिवृषभके उपदेशसे मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें पाँच प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति होती है; क्योंकि चार जाति और स्थावर प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति सासादन गुणस्थानमें मानी है।

६६१. प्र०—सासादन गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—पहले गुणस्थानमें जो ११७ प्रकृतियोंका उदय होता है, उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई पांच प्रकृतियोंको घटानेपर शेष ११२ रहती हैं। परन्तु सासादनमें नरकगत्यानुपूर्वीका उदय न होनेसे १११ प्रकृतियां उदययोग्य होती हैं।

६६२. प्र०—सासादन गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति कितनी प्रकृतियोंकी होती है ?

---

६६०. षट्खण्डागम, खण्ड ३, पु० ८; पृ० ६।

उ०—सासादन गुणस्थानके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, एकेन्द्रिय आदि चार जाति और स्थावर इन नौ प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति होती है।

६६३. प्र०—**मिश्र गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका उदय होता है ?**

उ०—दूसरे गुणस्थानमें १११ प्रकृतियोंका उदय होता है। उनमेंसे व्युच्छिन्न नौ प्रकृतियोंको घटानेपर शेष १०२ मेंसे नरकगत्यानुपूर्वीके सिवाय (क्योंकि वह दूसरे गुणस्थानमें घटाई जा चुकी है) शेष तीन आनुपूर्वी घटानेपर शेष रहीं ९९ प्रकृतियोंमें एक सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय यहां होनेसे तीसरे गुणस्थानमें उदययोग्य प्रकृतियां १०० हैं।

६६४. प्र०— **मिश्रगुणस्थानमें आनुपूर्वीका उदय क्यों नहीं होता ?**

उ०—तीसरे गुणस्थानमें मरण न होनेसे किसी भी आनुपूर्वीका उदय नहीं होता।

६६५. प्र०—**तीसरे गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?**

उ०—एक सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिकी उदय व्युच्छित्ति तीसरे गुणस्थानमें होती है।

६६६. प्र०—**चौथे गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?**

उ०—तीसरे गणस्थानमें १०० प्रकृतियोंका उदय होता है। उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति सम्यक् मिथ्यात्वको घटानेपर ९९ शेष रहती हैं। इनमें चारों आनुपूर्वी और सम्यक्त्व प्रकृतिको मिलानेसे १०४ प्रकृतियोंका उदय चौथे गुणस्थानमें होता है।

६६७. प्र०—**चौथे गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?**

उ०—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, नरकायु, देवायु, नरकगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, चारों आनुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, इन सत्रह प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति चौथे अविरत सम्यग्दृष्टी गुणस्थानमें होती है।

६६८. प्र०—**पाँचवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?**

उ०—चौथे गुणस्थानमें जो १०४ प्रकृतियोंका उदय कहा है, उनमेंसे व्युच्छिन्न हुईं १७ प्रकृतियोंको घटानेपर शेष ८७ प्रकृतियोंका उदय होता है।

६६९. प्र०—**पाँचवें गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?**

उ०—प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, तिर्यश्चायु, तिर्यश्चगति, उद्योत, नीच गोत्र इन आठ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति पाँचवें देशविरत गुणस्थानमें होती है।

६७०. प्र०—छठे गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है?

उ०—पाँचवें गुणस्थानमें ८७ प्रकृतियोंका उदय कहा है। उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति आठके घटानेपर शेष रहीं ७९ प्रकृतियोंमें आहारक शरीर और आहारक अंगोपांगको मिलानेसे ८१ प्रकृतियोंका उदय छठे गुणस्थानमें होता है।

६७१. प्र०—छठे गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है?

उ०—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग इन पाँच प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति छठे प्रमत्त संयत गुणस्थानमें होती है।

६७२. प्र०—सातवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है?

उ०—छठे गुणस्थानमें जो ८१ प्रकृतियोंका उदय होता है उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई पाँच प्रकृतियोंको घटानेपर शेष ७६ प्रकृतियोंका उदय होता है।

६७३. प्र०—सातवें गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है?

उ०—अर्धनाराच, कीलक, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, सम्यक्त्व प्रकृति इन चार प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति सातवें अप्रमत्त संयत गुणस्थानमें होती है।

६७४. प्र०—आठवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है?

उ०—सातवें गुणस्थानमें जो ७६ प्रकृतियोंका उदय कहा है, उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई चार प्रकृतियोंको घटानेपर शेष ७२ प्रकृतियोंका उदय होता है।

६७५. प्र०—आठवें गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है?

उ०—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन छै प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानमें होती है।

६७६. प्र०—नौवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है?

उ०—आठवें गुणस्थानमें जो ७२ प्रकृतियोंका उदय होता है उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई छै प्रकृतियोंको घटानेपर शेष रहीं ६६ प्रकृतियोंका उदय होता है।

६७७. प्र०—नौवें गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया, इन छै प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होती है।

६७८. प्र०—दसवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—नौवें गुणस्थानमें जो ६६ प्रकृतियोंका उदय होता है उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई छै प्रकृतियोंको घटा देनेपर शेष रहीं ६० प्रकृतियोंका उदय होता है।

६७९. प्र०—दसवें गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—केवल एक संज्वलन लोभकी।

६८० प्र०—ग्यारहवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—दसवें गुणस्थानमें जो ६० प्रकृतियोंका उदय होता है उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई एक प्रकृतिको घटा देनेपर शेष रहीं ५९ प्रकृतियोंका उदय होता है।

६८१. प्र०—ग्यारहवें गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—वज्रनाराच और नाराच संहननकी उदय व्युच्छित्ति ग्यारहवें उपशान्त कषाय गुणस्थानमें होती है।

६८२. प्र०—बारहवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—ग्यारहवें गुणस्थानमें जो ५९ प्रकृतियोंका उदय होता है उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई दो प्रकृतियोंको घटा देनेपर शेष रहीं ५७ प्रकृतियोंका उदय होता है।

६८३. प्र०—बारहवें गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति कितनी प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति क्षीण कषाय गुणस्थानके उपान्त्य समयसे होती है और पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पांच अन्तराय, इन चौदह प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति अन्तिम समयमें होती है।

६८४. प्र०—तेरहवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—बारहवें गुणस्थानमें जो ५७ प्रकृतियोंका उदय होता है उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई सोलह प्रकृतियोंको घटानेपर ४१ प्रकृतियां शेष रहती हैं।

उनमें एक तीर्थङ्कर प्रकृतिको मिला देनेपर ४२ प्रकृतियां उदययोग्य होती हैं।

६८५. प्र०—तेरहवें गुणस्थानमें उदयव्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—एक वेदनीय, औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर, छह संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वज्रऋषभ नाराच संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगतियां, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, निर्माण—इन तीस प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति तेरहवें सयोग केवली गुणस्थानमें होती है।

६८६. प्र०—चौदहवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—तेरहवें गुणस्थानमें जो ४२ प्रकृतियोंका उदय होता है उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई तीस प्रकृतियोंको घटानेपर शेष रहीं बारह प्रकृतियोंका उदय होता है।

६८७. प्र०—चौदहवें गुणस्थानमें उदयव्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—एक वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र, इन तेरह प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति अयोगकेवली गुणस्थानमें होती है।

६८८. प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व होता है ?

उ०—एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंका।

६८९. प्र०—सासादन गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व होता है ?

उ०—एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंका; क्योंकि यहां तीर्थङ्कर प्रकृति, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग इन तीन प्रकृतियोंकी सत्ता नहीं रहती।

६९०. प्र०—मिश्र गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—तीर्थङ्कर प्रकृतिके बिना १४७ प्रकृतियोंका।

६९१. प्र०—चौथे गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—१४८ प्रकृतियोंका। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टोके १४१ का ही सत्त्व रहता है, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिका सत्त्व नहीं रहता।

६९२. प्र०—चौथे गुणस्थानमें सत्त्व व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—एक नरकायुकी।

६९३. प्र०—पांचवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—एक नरकायुके बिना १४७ का, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टीकी अपेक्षा १४० का ही सत्व होता है।

६९४. प्र०—पाँचवें गुणस्थानमें सत्त्व व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती हैं ?

उ०—एक तिर्यञ्चायुकी।

६९५. प्र०—छठें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—नरकायु और तिर्यञ्चायुके बिना १४६ का, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टीकी अपेक्षा १३९ का ही सत्त्व रहता है।

६९६. प्र०—सातवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—छठे गुणस्थानकी तरह १४६ का अथवा १३९ का।

६९७. प्र०—आठवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—आठवें गुणस्थानसे दो श्रेणी प्रारम्भ होती हैं—उपशम श्रेणि और क्षपक श्रेणि। द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी उपशम श्रेणि ही चढ़ता है। अतः उनके सातवें गुणस्थानमें जो १४६ का सत्त्व कहा है उनमेंसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभको घटानेपर १४२ का सत्व होता है किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टी यदि उपशम श्रेणि चढ़ता है तो उसके सातवें गुणस्थानकी तरह १३९ का सत्त्व होता है और क्षपक श्रेणिवालेके अनन्तानुबन्धी ४, दर्शन मोहनीय ३ और मनुष्यायुके सिवाय तीन आयुके बिना १३८ का ही सत्त्व होता है।

६९८. प्र०—नौवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व होता है ?

उ०—आठवें गुणस्थानकी तरह इस गुणस्थानमें भी उपशम श्रेणिवाले द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके १४२, क्षायिक सम्यग्दृष्टिके १३९ और क्षपक श्रेणिवालेके १३८ प्रकृतियोंका सत्व होता है।

६९९. प्र०—नौवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—नौवें गुणस्थानके प्रथम भागमें नरकगति, तिर्यञ्चगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय जाति, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, उद्योत, आताप, साधारण, सूक्ष्म और स्थावर इन सोलह प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। दूसरे भागमें अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ इन आठ प्रकृतियोंकी सत्व व्युच्छित्ति होती है। तीसरे भागमें नपुंसक वेद, चौथे भागमें स्त्रीवेद, पांचवें भाग में छै नोकषाय, छठे भागमें पुरुषवेद, सातवेंमें

संज्वलन क्रोध, आठवेंमें संज्वलन मान और नौवें भागमें संज्वलन माया इस प्रकार नौवें गुणस्थानमें छत्तीस प्रकृतियोंकी सत्व व्युच्छित्ति होती है। यह सत्व व्युच्छित्ति क्षपक श्रेणिवालोंके ही होती है।

७००. प्र०—दसवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—दसवेंमें नौवें गुणस्थानकी तरह उपशम श्रेणीवाले द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टीके १४२ और क्षायिक सम्यग्दृष्टिके १३९ का सत्त्व रहता है तथा क्षपक श्रेणिवालेके नौवें गुणस्थानमें जो १३८ प्रकृतियोंका सत्त्व है उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई ३६ प्रकृतियोंको घटानेपर शेष रही १०२ प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है।

७०१. प्र०—दसवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—एक संज्वलन लोभकी व्युच्छित्ति होती है।

७०२. प्र०—ग्यारहवें गुणस्थानमें सत्त्व कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—दसवें गुणस्थानकी तरह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके १४२ और क्षायिक सम्यग्दृष्टीके १३९ का सत्त्व रहता है। इस गुणस्थानमें क्षपक श्रेणि नहीं है।

७०३. प्र०—बारहवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—दसवें गुणस्थानमें क्षपक श्रेणि वालेके जो १०२ प्रकृतियोंका सत्त्व होता है उनमें व्युच्छिन्न प्रकृति संज्वलन लोभको घटानेपर शेष १०१ प्रकृतियोंका सत्त्व होता है।

७०४. प्र०—बारहवें गुणस्थानमें सत्त्व व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—बारहवें गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्तिकी तरह पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला और पाँच अन्तराय इन सोलह प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

७०५ प्र०—तेरहवें गुणस्थानमें सत्त्व कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—बारहवें गुणस्थानमें जो १०१ का सत्त्व कहा है उनमेंसे व्युच्छिन्न १६ प्रकृतियोंको घटानेपर शेष रहीं ८५ प्रकृतियोंका सत्त्व तेरहवें सयोग-केवली गुणस्थानमें होता है।

७०६. प्र०—चौदहवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्व रहता है ?

उ०—चौदहवें गुणस्थानमें तेरहवें गुणस्थानकी तरह ८५ प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है परन्तु उपान्त्य समयमें ७२ और अन्तिम समयमें १३ प्रकृतियोंकी सत्ताके व्युच्छिन्न (नाश) हो जानेसे जीवका मोक्ष हो जाता है।

७०७. प्र०—चौदहवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थानके उपान्त्य समयमें पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, छै संस्थान, तीन अंगोपांग, छै संहनन, पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास एक वेदनीय, नीच गोत्र इन बहत्तर प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है और अन्त समयमें एक वेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थङ्कर, मनुष्यायु और उच्च गोत्र, मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन तेरह प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

७०८. प्र०—किन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति उदयव्युच्छित्तिके पीछे होती है ?

उ०—देवायु, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, अयशःकीर्ति इन आठ प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति पहले होती है, पीछे बन्धव्युच्छित्ति होती है।

७०९. प्र०—किन प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति और बन्धव्युच्छित्ति एक साथ होती है ?

उ०—मिथ्यात्व, भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, पुरुषवेद, संज्वलन लोभके बिना १५ कषाय मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, साधारण, अपर्याप्त इन इकतीस प्रकृतियोंका बन्ध और उदय दोनों एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं।

७१०. प्र०—किन प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति बन्धव्युच्छित्तिके पीछे होती है ?

उ०—पूर्वोक्त ८ + ३१ = ३९ प्रकृतियोंसे शेष जो इक्यासी प्रकृतियां रहती है उनका बन्ध व्युच्छेद पहले और उदय व्युच्छेद पीछे होता है।

●

१५

७११. प्र०—परोदयसे बंधनेवाली प्रकृतियाँ कौन-सी हैं ?

उ०—तीर्थङ्कर, नरकायु, देवायु, नरक गति, देवगति, नरक गत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग ये

ग्यारह प्रकृतियां परोदयसे बंधती हैं, अर्थात् तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदयवालेके तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता। इसी तरह नारकीके नरकायुका और देवके देवायुका बन्ध नहीं होता।

७१२. प्र०—स्वोदयसे बँधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उ०—पाँच ज्ञानावरण, पांच अन्तराय, चार दर्शनावरण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, तैजस और कार्मण शरीर, निर्माण, अगुरुलघु, वर्ण आदि चार और मिथ्यात्व ये सत्ताईस प्रकृतियां स्वोदयसे बंधती हैं। अर्थात् जिसके मिथ्यात्वका उदय होता है उसीके मिथ्यात्वका बन्ध होता है। इसी तरह शेष छब्बीस प्रकृतियोंके विषयमें भी जानना।

७१३ प्र०—स्वोदय और परोदयसे बँधनेवाली प्रकृतियाँ कौन-सी हैं ?

उ०—परोदय बन्धी ११ और स्वोदय बन्धी २७ प्रकृतियोंके बिना शेष ८२ प्रकृतियाँ स्वोदयसे भी बंधती हैं और परोदयसे भी बंधती हैं।

७१४. प्र०—निरन्तर बँधनेवाली प्रकृतियाँ कौन सी हैं ?

उ०—सैंतालीस ध्रुवप्रकृतियां, तीर्थङ्कर, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और चार आयु ये चौवन प्रकृतियां निरन्तर बँधती हैं।

७१५. प्र०—ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ कौन सी हैं ?

उ०—पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, पांच अन्तराय, मिथ्यात्व सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस और कार्मण शरीर, वर्ण आदि चार, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण ये सैंतालीस प्रकृतियां ध्रुवबन्धी हैं।

७१६. प्र०—निरन्तरबन्ध और ध्रुवबन्धमें क्या भेद है ?

उ०—जबतक बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती तबतक जिन प्रकृतियोंका प्रति समय अवश्य बन्ध होता है उन्हें ध्रुवबन्धी कहते हैं। उक्त सैंतालीस प्रकृतियों-का बन्धव्युच्छित्तिसे पहले प्रति समय सदा निरन्तरबन्ध होता है किन्तु तीर्थङ्कर और आहारकका बन्ध प्रारम्भ होनेके बाद जिन गुणस्थानोंमें उनका बन्ध पाया जाता है उनमें उनका प्रति समय निरन्तर बन्ध होता है तथा आयुका बन्ध जिस कालमें होना योग्य है उस कालमें आयुबन्ध होने पर अन्तर्मुहूर्त तक निरन्तर बन्ध होता रहता है। इसलिये इनको निरन्तरबन्धी कहते हैं।

७१७. प्र०—सान्तरबन्धी प्रकृतियाँ कौन सी हैं ?

उ०—स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार जाति, असातावेदनीय, नरक गति, नरक-गत्यानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अरति, शोक, अन्तके पांच संस्थान, पांच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ,

दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति ये चौंतीस प्रकृतियां सान्तर रूपसे बँधती हैं।

७१८. प्र०—सान्तरबन्धी प्रकृति किसे कहते हैं ?

उ०—बन्धकाल बीतनेसे जिस-जिस प्रकृतिकी बन्ध व्युच्छित्ति सम्भव है वह सान्तरबन्धी प्रकृति है। उक्त चौंतीस प्रकृतियोंका निरन्तर बन्धकाल एक समय है। अतः ये सान्तरबन्धी हैं।

७१९. प्र०—सान्तर निरन्तरबन्धी प्रकृतियाँ कौनसी हैं ?

उ०—५४ निरन्तरबन्धी और ३४ सान्तरबन्धी प्रकृतियोंके बिना शेष बत्तीस प्रकृतियाँ सान्तर रूपसे भी बँधती हैं और निरन्तर रूपसे भी बँधती हैं। जबतक इनकी प्रतिपक्षी प्रकृति रहती है तब तक ये सान्तरबन्धी हैं और प्रतिपक्षीके अभावमें निरन्तरबन्धी हैं। जैसे—जहां अन्य गतिका भी बन्ध पाया जाता है वहां देवगति सप्रतिपक्षी होनेसे सान्तरबन्धी है और जहाँ केवल देवगतिका ही बन्ध सम्भव है वहाँ निष्प्रतिपक्ष होनेसे देवगति निरन्तरबन्धी है।

७२०. प्र०—सादिबन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके बन्धका अभाव होकर पुनः बन्ध होता है उसके बन्धको सादिबन्ध कहते हैं। जैसे—उपशम श्रेणिमें बन्धका अभाव करके पुनः नीचे उतरकर बन्धका प्रारम्भ करनेवाले जीवोंके सादिबन्ध होता है।

७२१. प्र०—अनादिबन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—जिस बन्धके आदिका अभाव होता है उसे अनादिबन्ध कहते हैं। जैसे—उपशमश्रेणिपर नहीं चढ़े हुए मिथ्यादृष्टि जीवोंके अनादि बन्ध होता है।

७२२. प्र०—ध्रुवबन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—अभव्य जीवोंके बन्धको ध्रुवबन्ध कहते हैं, क्योंकि अभव्यके निरन्तर बँधनेवाली ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धका कभी भी अभाव नहीं होता।

७२३. प्र०—अध्रुवबन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—भव्य जीवोंके बन्धको अध्रुव बन्ध कहते हैं। क्योंकि उनके बन्धका अभाव भी पाया जाता है।

●

७२०-७२३. गो० कर्म०, गा० १२३।

१६

७२४. प्र०—प्रकृतिबन्धापसरण किसे कहते हैं ?

उ०—प्रकृतिबन्धका क्रमसे घटना प्रकृतिबन्धापसरण है।

७२५. प्र०—स्थितिबन्धापसरण किसको कहते हैं ?

उ०—स्थितिबन्धका क्रमसे घटना स्थितिबन्धापसरण है।

७२६. प्र०—स्थितिकाण्डक किसे कहते हैं ?

उ०—ऊपरके निषेकोंको क्रमसे नीचेके निषेकोंमें क्षेपण करके स्थितिको घटानेका नाम स्थितिकाण्डक है।

७२७. प्र०—स्थितिकाण्डक आयाम किसको कहते हैं ?

उ०—एक काण्डक सम्बन्धी निषेकोंका नाश करके जितनी स्थिति घटाई हो उसके प्रमाणका नाम स्थितिकाण्डक आयाम है।

७२८. प्र०—काण्डक किसको कहते हैं ?

उ०—काण्डक नाम पर्वका है। जैसे—ईखमें पोरिया होती हैं वैसे ही मर्यादा रूप स्थानका नाम काण्डक है।

७२९. प्र०—अनुभाग काण्डक किसको कहते हैं ?

उ०—बहुत अनुभागवाले ऊपरके स्पर्धकोंका अभाव करके उनके परमाणुओंको थोड़े अनुभागवाले नीचेके स्पर्धकोंमें क्रमसे मिलाकर अनुभागका घटाना अनुभाग काण्डक है।

७३० प्र०—अनुभाग काण्डकोत्करण काल किसको कहते हैं ?

उ०—अनुभाग काण्डकका घात अन्तर्मुहूर्तमें सम्पूर्ण होता है उस कालका नाम अनुभाग काण्डकोत्करण काल है।

७३१. प्र०—आयाम किसको कहते हैं ?

उ०—आयाम नाम लम्बाईका है। कालके समय भी एक साथ न होकर क्रमसे एकके बाद एक करके आते हैं। इसलिये कालके प्रमाणकी संज्ञा आयाम है। कहीं-कहीं ऊपर ऊपर जो निषेकरचना होती है उसको भी आयाम नामसे कहा गया है। जैसे—स्थितिके प्रमाणको स्थिति आयाम, स्थिति काण्डकके निषेकोंके प्रमाणको स्थिति काण्डक आयाम और गुणश्रेणीके निषेकोंके प्रमाणको गुणश्रेणी आयाम कहते हैं।

७३२. प्र०—गुणश्रेणि किसको कहते हैं ?

उ०—गुण कहते हैं गुणकारको। जहां गुणित क्रमसे निषेकोंमें द्रव्य दिया जाता है उसका नाम गुणश्रेणि है।

७३३. प्र०—गुणहानि किसको कहते हैं ?

उ०—गुणकार रूप, हीन हीन द्रव्य जहाँ पाये जायें उसे गुणहानि कहते हैं।

७३४. प्र०—फालि किसको कहते हैं ?

उ०—समुदाय रूप एक क्रियामें जुदे-जुदे खण्ड करके भेद करनेका नाम फालि है। जैसे—उपशमन कालमें प्रथम समयमें जितना द्रव्य उपशमाया वह उपशमकी प्रथम फालि है, दूसरे समयमें जितना द्रव्य उपशमाया वह दूसरी फालि है। इसी तरह अन्यत्र भी जानना।

७३५. प्र०—आगाल किसको कहते हैं ?

उ०—अपकर्षण करके द्वितीय स्थितिके निषेकोंके परमाणुओंको प्रथम स्थितिके निषेकोंमें मिलानेका नाम आगाल है।

७३६. प्र०—प्रत्यागाल किसको कहते हैं ?

उ०—उत्कर्षण करके प्रथम स्थितिके निषेकोंके परमाणुओंको द्वितीय स्थितिके निषेकोंमें मिलाना प्रत्यागाल है।

७३७ प्र०—प्रथम स्थिति किसको कहते हैं ?

उ०—विवक्षित प्रमाणको लिए हुए नीचेके निषेकोंको प्रथम स्थिति कहते हैं।

७३८. प्र०—द्वितीय स्थिति किसको कहते है ?

उ०—ऊपरवर्ती समस्त निषेकोंको द्वितीय स्थिति कहते हैं।

७३९. प्र०—उदयावली किसको कहते हैं ?

उ०—वर्तमान समयसे लेकर आवली मात्र कालको और उस कालमें स्थिति निषेकोंको आवली अथवा उदयावली कहते हैं।

७४०. प्र०—द्वितीयावली अथवा प्रत्यावली किसको कहते हैं ?

उ०—उदयावलीके ऊपरवर्ती आवलीको द्वितीयावली अथवा प्रत्यावली कहते हैं।

७४१. प्र०—अचलावली अथवा आबाधावली किसको कहते हैं ?

उ०—बन्ध समयसे लगाकर एक आवली काल तक कर्मोंकी उदीरणा आदि नहीं हो सकती। अतः उस आवलीको अचलावली अथवा आबाधावली कहते हैं।

७४२. प्र०—अतिस्थापनावली किसको कहते हैं ?

उ०—द्रव्यका निक्षेपण करते हुए जिन आवलीमात्र निषेकोंमें द्रव्यका निक्षेपण नहीं किया जाता है उसका नाम अतिस्थापनावली है।

७४३. प्र०—द्रव्य निक्षेपणका क्या अर्थ है ?

उ०—अन्य निषेकोंके परमाणुओंको अन्य निषेकोंमें मिलानेका नाम द्रव्य निक्षेपण है।

७४४. प्र०—उच्छिष्टावली किसको कहते हैं ?

उ०—कर्मोंका स्थिति सत्व घटते समय जो आवली मात्र स्थिति शेष रह जाती है उसे उच्छिष्टावली कहते हैं।

●